हरिशंकर परसाई का यथार्थवाद

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

की

हिन्दी साहित्य विषय में

पी-एच. डी. शोध उपाधि

हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

2005
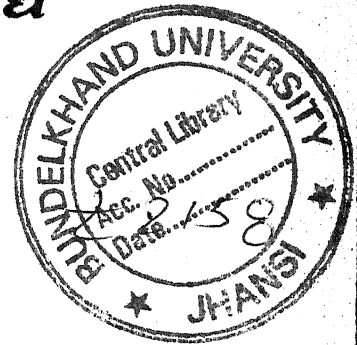
मार्गदर्शक

डॉ. उषा अग्रवाल

उपाचार्य एवं अध्यक्ष (हिन्दी विभाग)

आर्य कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

झाँसी (उ. प्र.)

शोधार्थी

जी. लाल

मार्गदर्शक का प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि ***श्री जी. लाल*** ने पी-एच.डी. (हिन्दी साहित्य) उपाधि हेतु बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी के तत्वावधान में *''हरिशंकर परसाई का यथार्थवाद''* शीर्षक पर मेरे मार्गदर्शन में शोध कार्य किया है, इन्होंने मेरे निर्देशन में विश्वविद्यालय की परिनियमावली के अनुसार 200 दिनों से अधिक अवधि तक कार्य किया है तथा अपनी उपस्थित दर्ज की है । मैं इन्हें शोध प्रबन्ध विश्वविद्यालय में प्रस्तुत करने एवं परीक्षण हेतु प्रेषित करने की स्वीकृति/संस्तुति करती हूँ ।

मैं इनकी पूर्ण सफलता की कामना करती हूँ ।

(डॉ. उषा अग्रवाल)
उपाचार्य एवं अध्यक्ष (हिन्दी विभाग)
आर्य कन्या महाविद्यालय,
झाँसी (उ0 प्र0)

घोषणा-पत्र

मैं *जी. लाल* यह घोषणा करता हूँ कि पी-एच.डी. (हिन्दी साहित्य) उपाधि हेतु बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी के विचारार्थ प्रस्तुत *"हरिशंकर परसाई का यथार्थवाद"* शीर्षक पर यह शोध प्रबन्ध मेरी मौलिक कृति है । शोध प्रबन्ध में दिये गये तथ्य एवं तत्संबंधी सामग्री मेरा अपना स्वयं का मौलिक कार्य है । कृति में उपलब्ध मार्गदर्शन एवं तत्संबंधी सुझावों का उपयोग किया गया है, जिसका यथा स्थान उल्लेख किया गया है । मैं यह भी घोषणा करता हूँ कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, अन्य व्यक्ति द्वारा इस विश्वविद्यालय अथवा अन्य किसी विश्वविद्यालय में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का अंश नहीं है ।

अनुसंधित्सु

G. Lal

दिनांक : 22.08.05

(जी. लाल)

अनुक्रमणिका

:: भूमिका ::

ईश्वर सुन्दर है, सुन्दर ही ईश्वर है। God is Beauty. Beauty is God दोनों छोटे-छोटे वाक्य में शब्दों का आगे पीछे होने से उच्चारण और अर्थ में परिवर्तन होना स्वाभाविक है पर अर्थ ईश्वर का एक ही है। ईश्वर की आराधना आस्था विश्वास की एक परत है, जो मन से जुड़ी है। ईश्वर प्रकाश है, उसका प्रकाश फैलता रहे यही ईश्वर यानि ईशू से प्रार्थना है।

हरिशंकर परसाई का यथार्थवाद ईश्वर के सत्य अर्थात् ईशू के सत्य पर निर्भर है। याचना करना मनुष्य का अपना स्वभाव है। परसाई का यथार्थ सत्य से जुड़ा हुआ एक सत्य है, जो उन्होंने देखा, उसे अपनी लेखनी से अपनी रचनाओं, भाषणों व वक्तव्यों के माध्यम से पिरोया है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी एक नवीन चेतना को जन्म देता है।

परसाई का यह विचार रहा कि रचनाकार जमाने के साथ चल कर अपने चिन्तन को थोपें नहीं, बल्कि दूसरे के चिन्तन को भी अपने चिन्तन के साथ मिलाकर एक नवीन चिन्तन को बनाये, तो उसमें एक नया पन होगा, उनका अपना मानना था, कि आज हर पल जिन्दगी के साथ जो कर रहा है वह भौतिकवादी सुख का एक हिस्सा है। उन्होंने अपनी विविध रचनाओं, उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, डायरी एवं अन्य विविधता लिये आलेख में व्यंग्य यथार्थ परक दृष्टि से आ गया है।

परसाई जी का शोध अध्ययन को छैः अध्याय में किया है। प्रथम अध्याय में परसाई का जीवन परिचय, यथार्थवाद, उसका स्वरुप, चिंतन, चिंतन में व्यंग्य को विस्तार से लिया है। व्यंग्य की पृष्ठभूमि प्राचीन साहित्य में

उलझने देने के आधार पर लिया है, जबकि आधुनिक परिदृश्य में व्यंग्य छोटे बड़ों के मध्य जीवन की तुला से जुड़ा एक हिस्सा है।

अध्याय द्वितीय में परसाई जी का रचना संसार को लिया है। उनके साहित्य रचना के विविध आयाम है। उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, टिप्पणी, संस्मरण, डायरी के अतिरिक्त अन्य चिन्तन भी है। कहानी उपन्यास के शीर्षक पढ़ते ही व्यंग्य का अहसास हो उठता है। भूत के पॉव पीछे, अपनी-अपनी बीमारी, माटी कहे कुम्हार से, ठिठुरता हुआ गणतंत्र शिकायत मुझे भी है। तिरछी रेखायें, निठल्ले की डायरी, शीर्षक उपन्यास कहानी है जो व्यंग्य के अहसास को बताते हैं। इसमें उनकी पन्द्रह पुस्तकें लगभग हैं, उनका अध्ययन समीक्षात्मक ढ़ग से किया है।

अध्याय तृतीय में परसाई जी का जनवादी रुप सामने रखा है। उनका अपना कल्पना संसार है, जिसका अपना औचित्य है। साक्षात्कार का एक पक्ष आमने-सामने की बातचीत है, जिसमें उन्होंने जो लिखा वह जीवन का साक्षात् अनुभव है। मनुष्य की पीड़ा को समझना, जितना सरल है उतना ही कठिन। पर उस पीड़ा के साथ हमदर्दी बताना भी जरुरी है।

अध्याय चतुर्थ में परसाई जी की यात्रा का जिक्र किया है, जो उन्होंने अपने यात्रा वृतान्त में साफ-साफ लिखा है। के साथ ही संवाद तंत्र का पक्ष भी रखा है।

उपन्यास की पृष्ठभूमि में उन्होंने कैसे क्यों लिखा उसका यही आकार क्यों रखा चर्चा की गं है। जनवादी विचारधारा के उद्भव एवं विकास की चर्चा है वही उनका जनवादी दृष्टिकोण भी साफ-साफ है। वे हर बात इतनी सही अचूक कहते हैं, जो जीवन से जुड़ी है और नहीं। उनके अपने विचार में अपनी

सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को हमें सुरक्षित रखना है। इसी का आधार उनके लेखान की पैनी तिरछी दृष्टि है, जो व्यंग्य हास्य भी है।

अध्याय पंचम में परसाई का समग्र साहित्य की समीक्षा की है, साथ ही परसाई के समय-समय पर दिये गये व्याख्यान का जिक्र किया है। उनके व्याख्यान भी साहित्य विद्या के महत्वपूर्ण अंग हैं। उन्होंने अपने व्याख्यानों में विस्तार से अपनी बात कहीं है, साथ ही उदाहरण भी दिये हैं।

अध्याय षष्ठम परसाई जी के चिंतन की मुख्य अभिव्यक्ति लेखन का है। तुलसीदास चन्दन घिसें व्यंग्य उनकी अपनी अनूठी शैली के अभिव्यक्ति है। इसमें सामाजिक उपादेयता/सांस्कृतिक झांकी है।

परसाई जी का समग्र साहित्य यथार्थवादी है यह यथार्थ भोगा हुआ यथार्थ है। यथार्थवादी साहित्य में परसाई जी का स्थान प्रमुखता से लिया जाता है। यथार्थ में व्यंग्य विद्या का अपना अस्तित्व है जो साहित्य में नई चेतना का कार्य प्रमुखता से करेगा, और परसाई जी इस यथार्थ व्यंग्य चिन्तन के सफल चितेरे हैं।

आभारिका

सर्वप्रथम मैं विद्यादेवी माँ सरस्वती के श्री चरणों में नमन् करता हूँ जिनके असीम् आर्शीवाद से मैं अपना यह शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने में सक्षम हो सका हूँ, मेरे मन मस्तिष्क में शोध कार्य करने के लिये प्रेरणा भी ईशू के आर्शीवाद से ही उद्‌भवित हुयी।

मेरे शोध कार्य को आगे बढ़ाने में सहायक डॉ. ऊषा अग्रवाल, उपाचार्य एवं अध्यक्ष (हिन्दी विभाग) आर्य कन्या महाविद्यालय, झाँसी (उत्तरप्रदेश) की भी अनन्त आभारी हूँ, जिनके बिना शायद यह कार्य कभी पूर्ण रुप नहीं ले सकता। डॉ. अग्रवाल के मूल्यवान सुझावों और सहयोग से मुझे अत्याधिक लाभ हुआ जिससे यह दुर्लभ कार्य भी आसानी से पूरा होता चला गया। उनके धन्यवाद के लिये मेरे हृदयान्तराल में कोई शब्द नहीं है।

मैं अपने अभिभावकद्वय मिस लिया ओशियार एवं मिस लिंडा स्टेन्टन (कुल पहाण मिशन निवासी) का भी हृदय से आभारी हूँ, जिनके महत्वपूर्ण सुझावों एवं सहयोगात्मक कार्यों से मैं अपने कार्य को अंतिम रूप दे सका।

मैं श्रीमती एम.बी. लाल एवं समस्त सी.पी. मिशन, झाँसी परिवार के सदस्यगण जिन्होंने हमेशा मुझे तकलीफ एवं परेशानी में प्रार्थनाओं आदि के द्वारा नैतिक सहयोग दिया। इसी प्रकार से मुझे मानसिक एवं आर्थिक रूप से सहयोग कर शोध कार्य करने में अग्रसरित किया।

अंत में, मैं अपने अग्रज श्री आभोस लाल का हृदय से आभारी हूँ जिनके उत्साहवर्धन से यह शोध कार्य सरलता से पूर्ण होता चला गया। मैं अपने उन समस्त गुरुजनों का भी आभारी हूँ जिनका समय-समय पर प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से कार्यान्वयन सहयोग प्राप्त हुआ।

मैं अपने समस्त गुरुजनों, अभिभावकों एवं सहयोगियों की प्रेरणा से ही यह दुरुह कार्य कर पाया हूँ और आपके समक्ष यह शोध प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ।

शोधकर्त्ता

(जी. लाल)

अध्याय - प्रथम

अध्याय–प्रथम

(1) हरिशंकर परसाई का जीवन परिचय :–

व्यंग्य के माध्यम से हमारे जीवन की यथार्थता को सिद्ध करने वाले इस मनीषी का जन्म 22 अगस्त 1924 को होशंगाबाद जिले के जमानी नामक गाँव में हुआ था । श्री परसाई एक मध्यमवर्गीय परिवार में पैदा हुये थे । श्री परसाई जीवन पर्यन्त अविवाहित ही थे । इनके परिवार में दो भाई और एक बहन थी ।

जब श्री परसाई मैट्रीक का अध्ययन कर रहे थे तभी इनकी माता का देहान्त हो गया और माता के देहान्त के बाद इनके पिता जो कि लकड़ी के कोयले की ठेकेदारी करते थे को असाहय बीमारी होने के कारण वे भी जल्दी ही काल के गाल में समा गये ।

बचपन से ही इन्होंने आर्थिक समस्याओं का सामना किया और अपनी जिम्मेदारियां निभाई । यही से वास्तविक जीवन संघर्ष प्रारंभ हुआ । परन्तु इन्हें यही से ताकती भी मिली और बुनियादी शिक्षा भी । आर्थिक कठिनाईयों के बावजूद श्री परसाई जी ने अपना अध्ययन चालू रखा और आपने नागपुर विश्वविद्यालय से एम.ए. (हिन्दी) से उत्तीर्ण किया । तत्पश्चात् आपने टीचिंग डिप्लोमा भी हासिल किया । अपने जीवन के संघर्ष की बुनियादी तालीम परसाई जी ने यही से अर्जित की और जीवन पर्यन्त वे इससे लड़ते रहे ।

18 वर्ष की आयु में आपने अपनी पहली नौकरी जंगल विभाग, नाकू (इटारसी के पास) से प्रारंभ की फिर छः माह खंडवा में अध्यापन का कार्य भी किया। 1941-43 के मध्य आपने दो वर्ष जबलपुर के स्पेन्स ट्रेनिंग कॉलेज में शिक्षण कार्य का अध्ययन भी किया। 1943 से मॉडल हाईस्कूल, जबलपुर में अध्यापन कार्य प्रारंभ किया किसी विवाद के कारण आपने 1952 में पद से त्याग पत्र भी दिया।

पांच भाई बहिनों में बड़े होने के कारण परसाई जी ही माँ की मृत्यु का अर्थ समझते थे। बाकी भाई–बहिन अबोध थे माँ की मृत्यु की असंजसता का उन्हें ज्ञान न था तथा पिता भी पत्नी की मृत्यु के कारण अंदर से टूट गये थे। ''गर्दिश के दिन'' नामक निबंध में उन्होंने अपने पिता के दुःख और प्लेग की रातों का जिक्र किया है। जीवन संगिनी निहीत जीवन में केवल निराशा, चिन्ता व निष्क्रियता का भी भावुक चित्रण किया गया है । परसाई जी ने न केवल परिवार का भार वहन किया वरन् जीवन से सदैव संघर्षरत् रहे ।

1953-57 तक आपने फिर प्रायवेट स्कूलों में भी अध्यापन का कार्य किया। बाद में नौकरी को अंतिम रुप से नमस्कार किया। उसके बाद स्वतंत्र लेखन को अंगीकार कर साहित्य का सृजन करते रहे।

1956 में जबलपुर में 'बसुधा' नामक साहित्यिक पत्रिका का संपादन व प्रकाशन करते रहे, पत्रिका संपादन में घाटे के बावजूद आपने 1958 तक इस पत्रिका का अनवरत प्रकाशन किया।

श्री परसाई जी को महत्वपूर्ण साहित्यिक अवदान के लिये जबलपुर विश्वविद्यालय द्वारा डी. लिट. की मानद उपाधि प्रदान की गयी।

वर्ष 1982 में आपको हिन्दी का साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया। विश्व साहित्य सम्मेलन (1952) में भारतीय प्रतिनिधि मंडल के एक सदस्य के नाते सोवियत संघ की यात्रा भी की। व्यंग्यकार की इस भूमिका को निभाते हुए आपका देहांत 10 अगस्त 1995 विश्व को हुआ ।

श्री परसाई जी ने हिन्दी विद्या से अपनी शैली को इस तटस्थता के साथ समाज के सामने लाया कि वास्तविक रुप से वह आज भी हमें दिशा निर्देशित करती रहती है परन्तु उसके माध्यम से अपनी बात प्रस्तुत करना और उससे समाज का हित होना बड़ा ही कठिन सा प्रतीत होता है। लेकिन साहित्य के इस पुरोधा ने अपनी सहज, सरल और ओजस्वी वाणी के माध्यम से हमें सदैव ही यथार्थवाद का रसास्वादन करवाया।

हरिशंकर परसाई जी ने अपने जीवन में यथार्थता को महत्वपूर्ण स्थान दिया। वे व्यंग्य के साथ-साथ ओज प्रवृति के भी परिचायक थे। यथार्थ अर्थात वास्तविकता, इसकी हमारे जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। व्यक्ति दैनिक जीवन में भी कहीं न कहीं इसको अपने साथ उपलब्ध पाता है।

हरीशंकर परसाई जी के कथा-साहित्य में हमें यथार्थवाद का स्वरुप किंचितमात्र भी मिथ्या नहीं लगता है। परसाई जी ने साहित्य में व्यंग्य के साथ-साथ जीवन के सरल, सहज और सटीकतापूर्ण उदाहरणों से संयोजित किया है ।

परसाई जी हमारे जीवन में आने वाली प्रत्येक समस्याओं के सलाहकार भी है। उनके द्वारा कई सामान्य और चिरपरिचित अनुभवों से हमें प्रेरणा मिलती है। परसाई जी ने जीवन की सच्चाई को हमारे समक्ष नये-नये रुपों में प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से हमें समाज के साथ जीने और यथार्थ में कैसे समस्याओं से निपटा जाये' यह मूलमंत्र प्रस्तुत किये है। उनके द्वारा प्रस्तुत किये गये अनुभव एवं उदाहरण अनुभव-संसार में अत्याधिक प्रामाणिक है।

(2) परसाई जी और यथार्थवाद :-

परसाई के कथा-साहित्य का मूलभूत मंत्र व्यंग्य है और व्यंग्य के माध्यम से वे अपनी बात सहज-सरल तरीके से समाज की कुरीतियों को उजागर करने के लिये भी करते हैं। सामाजिक और राजनीतिक जीवन की मूल्यहीनता पर कोई भी पहलू उनकी दृष्टि से नहीं बच पाता । परसाई जी ने अपनी कमल सदैव वास्तविक तथ्य को जनता के समक्ष लाने के लिये ही चलायी वे इसके परिणामों से भिज्ञ थे।

समाज के उत्पीड़ित वर्गो, खासकर गरीब, खासकर नारी जाति के प्रति परसाई में गहरी करूणा है, लेकिन उसके उठ-खड़े होने पर उनका अटूट विश्वास भी है। मनुष्य के ढोंग उसके स्वार्थ और अमानवीय आचरण की भी वे निर्मम आलोचना करते है, इसके लिये वे व्यंग्य को सर्वाधिक सटीक माध्यम मानते हैं।

जीवन में आने वाली गैर यथार्थवादी ताकतों से निपटने के लिये उन्होंने अपने अनुभवों को भी उजागर किया है। इससे उनकी रचना का यथार्थ पाठक के

लिये गहरा, अधिक कलात्मक और अधिक विश्वसनीय हो उठता है। वे सहज विचारों के धनी है। कोई भी बात उनकी घूमा-फिरा कर बताने की नहीं होती।

'रानी नागफनी की कहानी' फैंटेसी के बावजूद समकालीन भारतीय जीवन के यथार्थ और उसकी बहुविध विडंबनाओं का सजीव दस्तावेज बन गयी है। परसाई जी के कथा-साहित्य का कितना युगांतरकारी महत्व है, इस बात का पता इस तथ्य से चलता है कि 'नयी कहानी' धारा के दोनों चोटी के कहानीकारों, भीष्म साहनी और अमरकान्त की सफलता का रहस्य भी बहुत कुछ व्यंग्य ही है। व्यंग्य भी और उनकी उन्मुखता ही उन्हें उनके आरंभिक आदर्शवाद और रूमानियत से क्रमशः मुक्त करती जाती है।

परसाई जी ने व्यंग्य को अधिक सामान्य भाषा में समाज के सामने रखा है, और बाद में उसे उदाहरण के माध्यम से भी समझाया है। समाज की कुरीतियों को भी उन्होंने अपने भावों से सुसज्जित किया है। परसाई जी के कथा-साहित्य में समकालीन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिदृश्य में एक नैतिक और रचनात्मक हस्तक्षेप है। उनकी भाषा व शैली में ओज व निर्भीकता होने के कारण हमारे कर्तव्यों व दायित्वों के प्रति सहानुभूति भी मिलती है। आज उनकी यही प्रवृति हमारी पथ-प्रदर्शक बन गयी है। समसामयिक घटनाक्रमों में परसाई जी ने अपने समाज को नयी राह दिखाने की कोशिश की है।

परंपरागत लेखन से अलग परसाई की रचनाओं में एक ताजगी है, जहां वे रोजमर्रा के जीवन में आने वाली कठिनाईयों और सामाजिक आचरण से जुड़े प्रश्नों को उठाते हैं। इनसे हमारे संपर्क में आने वाले कई तरह के व्यक्तित्व होते हैं। उनके विचार हमारे जीवन के संस्कारशील व्यक्तित्व की आकांक्षा है। वे सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक रुपांतरण कई तरह की जटिलताओं का निर्माण करते हैं। परसाई जी ने जीवन के यथार्थ का जो ताना-बाना बुना है वह हमारे आंतरिक व बाहरी क्षेत्रों की चर्चाओं का विधान होता है और इसकी रचना करते समय विधा की सीमा को अपने लेखन की सीमा नहीं बनाते हैं।

परसाई जी ने अपनी वाकपहुता और चातुर्यपूर्ण शैली से परंपरागत बुनावट को तोड़ा है ओर व्यंग्य के माध्यम से इन सभी क्षेत्रों में जारी संस्कारशीलता और रुढ़िवादिता को तोड़ा है। यही कारण है कि परसाई जी की सभी रचनाओं में व्यंग्य की प्रधानता है।

परसाई जी के लेखन की विशेषता है समकालीनता या समवर्ती घटनाक्रम। समवर्ती घटनाक्रम के माध्यम से परसाई जी ने विश्व प्रधान शैली को उजागर किया है। समवर्ती घटना के माध्यम से उनकी साहित्यिक महत्ता कम नहीं होती बल्कि जीवन का विश्वसनीय दस्तावेज बन जाती है। रचनाकार किसी भी वस्तु को ठहरा हुआ नहीं मानता और उसके परवर्ती विकास को पूर्ववर्ती रूप के सातव्य में देखता है। रुढिया और अंधविश्वास उनकी रचनाओं में अनुकरण का

केन्द्र बिन्दु रहे है। परसाई जी ने अंधविश्वास व समाज में व्याप्त पुरानी रुढ़िवादिता को भंग करने की कोशिश की है परन्तु उनके लिये उन्होंने नवीन प्रयोग किये हैं जिससे समाज का वर्तमान स्वरुप समाप्त न हो पाये।

अपने 36 वर्षो के निरंतर लेखन के दौरान ही हमारे देश में आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक जीवन का विकास हुआ है। इसी तारतम्य में जीवन को व्यक्त करने वाला यथार्थ निरंतर व्यापक होता गया है। इससे समाज का विकास ही संभव हो पाया है। परसाई जी ने अपनी लेखनी इसी समय अधिक चलायी है।

परसाई जी ने अपनी व्यंग्य रचनाओं के माध्यम से जीवन के कंई बिन्दुओं से साक्षात्कार करवाया है, वे जीवन में कहीं भी किसी भी क्षण विचारों को भावात्मक संवेग प्रदान करते है और इसी प्रकार धीमी गति के वेग से जीवन के उतार–चढ़ाव को भी देखते है।

परसाई जी यथार्थवाद की खुली पुस्तक के समान है, वे अपनी पैनी नजर से समाज की कठिनाईयों और गरीबों की मुसीबतों से निरंतर समाज को अवगत कराते रहे है। समाज में होने वाले परिवर्तनों से भी उन्ह9ोनें कुछ सीखा है और उसकी कमियों को दूर करने की भी कोशिश की है। परसाई जी यथार्थवादी चिंतन के जनक है, उन्होनें भले ही व्यंग्य के तीखे तीर चलाये हो परन्तु वे नारी जाति के अश्रु जनित व वेगवान विचारों के धर्नुधर भी है। उनके यथार्थ का स्वरुप चिंतनशील है एवं हमारे समाज को इस पर सोचने पर भी मजबूर करते है।

परसाई जी ने अपने चारों ओर घटित होने वाली घटनाओं को ही हमारे समक्ष रखा है । शायद उनकी रचनायें ही हमारी निदेशक है और चाहकर भी हम इसे झूठला नहीं सकते है। परसाई जी ने अपनी रचनाओं में संघर्ष के साथ साक्षात्कार की कोशिश की है।

परसाई जी ने अपने उपन्यासों में सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक स्थितियों का सूक्ष्म चित्रण किया है। ये चित्र निर्जीव चित्र नहीं है बल्कि इसमें परसाई जी की चेतना सर्वत्र जागृत रही है, इसलिये उनके व्यंग्य सजीव व सचित्र बन गये है। परसाई जी ने अनैतिकता की खाल को पहने लोगों को भी अपनी लेखनी से उजागर किया है। उनके उपन्यासों में भ्रष्टाचार और उसे फैलाने वालों के खिलाफ विरोध दर्ज कराया है।

यथार्थ चित्रण उनके उपन्यासों व कहानियों का प्रमुख औजार है। पूँजीवादी, सामंतवादी व्यवस्था पर उन्होंने कड़ा प्रहार किया है। ''रानी नागफनी की कहानी'' में उन्होंने समाज में व्याप्त सभी प्रकार की विदुपताओं का उद्घाटन किया है। परसाई जी ने असामाजिक घटनाओं को भी अपनी लेखनी में स्पष्ट किया है। ''तट की खोज'' में परसाई जी ने दहेज समस्या को उठाया है। शीला के माध्यम से उन्होनें नारी के प्रति सफेदपोशों के व्यवहार को स्पष्ट किया है। आधुनिक व स्वतंत्र लड़कियों को किन कठिनाइयों से गुजरना पड़ता है, परसाई जी ने इसका सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत किया है।

अतः हम कह सकते है कि परसाई जी ने अपने कथा साहित्य से समाज, राजनीति व धार्मिक स्थितियों का सूक्ष्म अवलोकन किया है। परसाई जी के विचारों की तीव्रता हमें उनकी कहानियों में भी देखने को मिलती है क्योंकि परसाई जी को कहानियों व निबंध की तुलना में उपन्यासों का सम्प्रेषण रास नही आया, यही कारण है कि परसाई जी के उपन्यास भी कम है।

परसाई जी ने समाज के भीतर घुसकर उसके विविध तत्वों का उद्घाटन किया है। परसाई जी ने यथार्थता के संदर्भ में लिखा है कि व्यक्ति जीवन तथा लेखन के संदर्भ में परसाई जी पूरी तरह से गंभीर है, व्यंग्य को जीवन की समीक्षा और अपने से साक्षात्कार मानते है। परसाई जी ने एक स्थान पर लिखा है कि व्यंग्य मेरे लिये गंभीर कर्म है। प्रश्न है कि कोई भी लेखक अपने युग की विसंगतियों के कितने यज्ञों से खोजता है, उस विसंगति की व्यापकता क्या है और यह जीवन में कितनी अहमियत रखती है, सच्चा व्यंग्य जीवन की समीक्षा होती है, वह मनुष्य को सोचने के लिये बाध्य करता है, अपने से साक्षात्कार करता है। ''जिन्दगी बहुत जटिल चीज है, इसमें खालिस हंसना या रोना जैसी चीज नहीं होती। बहुत सी हास्य रचनाओं में करुणा की अंतर्धारा भी होती है।[1]

परसाई जी ने व्यंग्य के बारे में अपना विचार व्यक्त करते हुये बताया है कि व्यंग्य अव्यवस्था की विद्रुपताओं की ओर संकेत करता है। परिवेश को व्यापकता, विसंगति की गहराई तथा अभिव्यक्ति की पराकाष्ठा व्यंग्य की सार्थकता को प्रकट करती है।

---

(1) परसाई-हरिशंकर : 'सदाचार का तावीका' में उदघृत।

यथार्थवाद का स्वरुप :-

यथार्थवाद के माध्यम से परसाई जी ने मानवीय जीवन के प्रत्येक पहलुओं को स्पष्ट किया है। समाज के दैनिक जीवन के समग्र पहलुओं का अनुशीलन किया है, उनका यथार्थवाद सामाजिक व आर्थिक है, कहीं-कहीं उन्होनें राजनीतिक यथार्थ की भी चर्चा की है, वे प्रायः सत्य सेवा की ओर उन्मुख रहे और समाज की सेवा की बात करते रहे, वे जनता के पक्षधर ही रहे।

परसाई जी ने सत्यता की खोज के आधार पर ही जनता की सेवा की वे सदैव यथार्थ की बात पर ही केन्द्रित रहे।

''एक ओर देश के शासकों द्वारा उसे उन्नति की ओर ले जाने की बात की जाती है तो दूसरी तरफ उन्हीं सत्ताधीशों में समाज को गर्त में ले जाने वाले षडयंत्रकारी मौजूद है। कथनी और करनी का यही फर्क अन्तर्विरोधों को जन्म देता है।'' (1)

परसाई जी ने स्वयंसिद्धा के रुप में स्वयं को एक श्रमिक, अनाश्रित व गरीब मजदूर के रुप में ही देखा, वे कहते थे इन सब का पक्ष सदैव मजबूत ही रहता है और मजबूत ही रहेगा।

दैनिक जीवन की घटनाओं का प्रतिबिंब :-

परसाई जी की रचनाओं में दैनिक जीवन की घटनायें सदैव परिलक्षित होती है, जिस प्रकार मुंशी प्रेमचंद जी ने रोजमर्रा की घटनायें चित्रित की है उसी

---

(1) *डॉ. मंजुला गुप्ता : 'हिन्दी उपन्यास, समाज और व्यक्ति का द्वंद' से उदघृत*

प्रकार से परसाई जी ने भी अपनी रचनाओं में इसे चित्रित किया है। उनके साहित्य में छोटी-छोटी बातों के माध्यम से विचारों को केन्द्रीत करने का प्रयास किया है। परसाई जी का यही मामूलीपन उनकी विशिष्टता है। उनका रचनात्मक कौशल ही रचनाओं की विशिष्टता बन जाती है। परसाई जी का सूक्ष्म अवलोकन व गहन परीक्षण होने के कारण वे रचनाओं के प्रति कौशल सिद्ध हो जाते है। रचनाविधान की बात परसाई जी के साहित्य में देखने को मिलती है। वे अपनी रचना पर्मिता के सिद्ध हस्त समझे जाते हैं।

आम आदमी की वैचारिक शक्ति, तर्क क्षमता और सतर्क वैज्ञानिक बोध लगभग नहीं के बराबर होता है परन्तु यदि कोई नेतृत्व इसे बयान करे तो वे भी इसके प्रति आश्वस्त हो जाते है।

समकालीन यथार्थ का सत्य :-

परसाई जी के कथा साहित्य में समकालीन ऐतिहासिक सत्य की भी अभिव्यक्ति हुयी है। उनका मानना था कि व्यक्ति को अपने युग के प्रति ईमानदार होना चाहिये। उनके साहित्य के माध्यम से समकालीन, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक स्थितियों एवं घटनाओं को वास्तविक स्वरुप हमारे समक्ष आता है। प्रेमचंद का साहित्य जिस प्रकार स्वतंत्रतापूर्व का इतिहास है उसी प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात का इतिहास परसाई जी का इतिहास है। परसाई जी ने

अपने उपन्यासों व निबंधों में भी समकालीन परिदृश्य का चित्रण किया है, परसाई जी ने राजनीतिक सिद्धांतहीनता, अवसरवादिता आदि का सटीक चित्रण किया है।

कथा साहित्य में संवेदनशीलता :-

परसाई जी के साहित्य में दैनिक जीवन की घटनाओं का जिक्र किया गया है। मानव जीवन की प्रत्येक संवेदना का उन्हें आभास था और अपनी पैनी अन्वेषक दृष्टि के कारण उनसे कोई नहीं बच सकता था। नेताओं व ढोगिंयों के दिखावे और बड़बोलेपन से वे त्रस्त थे और सदैव ही उन्हें फटकार लगाते रहते थे। मामूली व षुष्क विषय को साहित्य की कोटि में प्रतिष्ठित कराने में उनकी संवेदना सर्वोपरि है।

''हरिशंकर परसाई के बारे में जब संवेदना की बात उठती है तो कभी ऐसा नही लगता कि उनकी संवेदना प्रेमचंद, यशपाल या किसी भी प्रगतिशील से प्रगतिशील अथवा जाने माने लेखक से उन्नीस है। लेखक का मुख्य आधार अगर कोई है तो संवेदना है।''(1)

संवेदना ही सबसे बड़ा उदाहरण है जिससे हम कहीं भी और कभी भी मानवीय पहलुओं का अध्ययन कर सकते है। परसाई जी ने शायद ही ऐसा कोई पहलू खोजा हो जो मनुष्य से सम्बन्धित न हो।

---

(1) *गिरिराज किशोर : संवेदना की तीसरी आँख, पृ. संख्या – ३१ से उदघृत।*

व्यवस्था जनित अमानवीयता के प्रति करुणा :-

परसाई जी के स्तम्भ व कथाओं में व्यवस्था जनित अमानवीयता के प्रति करुणा के भाव आज भी दृष्टिगोचर होते है। परसाई जी की करुणा आम आदमी के प्रति है। आधुनिक व्यवस्था में दिखाई देने वाली त्रासदी और किसी भी समस्या के प्रति वे सदैव ही सजग रहे, उनकी लेखनी हमेशा अव्यवस्था के लिये ही अपने शब्द लिखती थी।

वे सदैव कहते थे कि कोई व्यवस्था समाज के लिये क्यों न हो इसमें सर्वहारा वर्ग ही हमेशा पिसता रहता है। व्यवस्था के प्रति आक्रोश तथा आम आदमी के प्रति करुणा का यह स्वरुप परसाई जी के लेखो में भी देखा जा सकता है। उन्होनें शासन व्यवस्था ही नहीं बल्कि सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक अव्यवस्था के प्रति भी अपना आक्रोश जताया है। संपूर्ण व्यवस्था ही त्रासदायक है। इस व्यवस्था में जकड़ा हुआ आदमी असहाय एवं बैचेन है तथा इसे तोड़ने के लिये प्रयत्नरत है। आज भी परसाई जी का कथा साहित्य समकालीन व्यवस्था को चुनोती देता हुआ नजर आता है।

नैतिकतावादी यथार्थ :-

परसाई जी नैतिकतावादी लेखक है, डॉ. नामवर सिंह जी ने परसाई जी को नैतिकतावादी लेखक कहा है। परसाई जी की रचनाओं में रुढ़ियों तथा परम्पराओं में व्यस्त सामाजिक बुराईयों का खंडन किया है किन्तु उसके साथ समाज के नैतिक

मापदंडो को आधार मान कर उन्होनें सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक मूल्यों तथा घटनाओं का विवेचन किया है। उनका प्रयास सदैव ही नैतिक मूल्यों की स्थापना की ओर रहा है। परसाई जी मानवीय जीवन मूल्यों के प्रबल पक्षधर रहे है उन्होनें समाज में व्याप्त बुराइयों को सदैव ही अपने प्रयत्नों से दूर करने का प्रयास किया है । इस आधार पर सामाजिक मूल्यों को समाज की भूमि मानकर ही इन मूल्यों को बरकरार बनाये रखने में सहायता पहुँचाने की अपील भी की है।

परसाई जी की नैतिकता धर्म, जाति व सम्प्रदाय विशेष के प्रति नहीं बल्कि मानव जाति के प्रति है। बदलते हुये नैतिक मूल्यों के प्रति परसाई जी ने चिंता व्यक्त की है। जीवन मूल्यों, शाश्वत मूल्यों का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है ऐसी स्थिति में नैतिक मूल्यों की रक्षा करना भी असंभव प्रायः लग रहा है। परसाई जी ने अपनी रचनाओं में नैतिकतावादी यथार्थ की सफल प्रस्तुति की है । बदलते हुये सामाजिक मूल्यों एवं कमरतोड़ मंहगाई बर्दाश्त करने वाले आदमी के प्रति करुणा व्यक्त करने वाले परसाई जी ने नैतिकता वादी यथार्थ को स्थापित करने का प्रयास किया है। उनका मानना है कि नैतिक मूल्यों से हमारे सभ्यता व संस्कृति के स्तम्भ मजबूत होते हैं' जो कि समाज का आधार हैं।

परसाई जी ने अपने कथा साहित्य को संपूर्ण भारत अथवा यों कहें कि समग्र व्यवहार को अपने साहित्य में स्थान दिया है। मानव से सम्बन्धित कोई भी विषय क्यों न हो वह इसके कथाओं की विषय वस्तु रही है। प्रत्येक सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक विषयों को उन्होनें अपने साहित्य का विषय बनाया है ।

परसाई जी का यथार्थवादी चिंतन :-

परसाई जी मूलतः यथार्थवादी चिंतक ही रहे है। समाज के प्रत्येक पहलुओं पर बोलने वाला व्यक्तित्व हिन्दी साहित्य में वह भी व्यंग्य के माध्यम से कटाक्ष करने वाला परसाई जी के अतिरिक्त कोई भी नहीं। यथार्थवादिता उनके साहित्य में कूट-कूटकर भरी हुई है। परसाई जी ने मानव जीवन मूल्यों को सर्वाधिक तरजीह दी हैं। इससे स्पष्ट है कि उनका कथा साहित्य सदैव ही मनुष्य जनित हैं। साथ ही उन्होंने आंतरिक सामाजिक अंतर्विरोधी तथा वैषम्य को बहुत अच्छी तरह देखा है, परखा तथा जाना है। समाज में अंतर्विरोध ही सबसे बड़ा खतरा है जिससे सदैव हानि की संभावना रहती है।

सामाजिक जीवन में उत्पन्न होने वाली विसंगतियों को परसाई जी ने अच्छी तरह से जाना है और उसके कारणों का विवेचन भी किया है। सामाजिक चिंतन ने जहाँ एक ओर समाज के विचारों को प्रभावित किया है, वहीं मनुष्य को अग्रसर विकसित होने पर भी बल दिया है।

परसाई जी की अन्तर्दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म एवं भेदक है। उनकी खोजी निगाहों से कोई भी विसंगति, विषमता एवं बुराई नहीं छिपती। परसाई जी ने यथार्थता को बड़े ही गहन तरीके से अध्ययन किया है। वे उसकी गहराई तक जाते है उसकी खोजबीन करते है। समाज में व्याप्त बारीक व कठिन समस्याओं पर भी उन्होंने अपनी लेखनी चलायी है।

हालाँकि उनका अध्ययन एक ही स्तर पर ही परिलक्षित होता है। परसाई जी की अनुभव, अन्तर्दृष्टि, अवलोकन क्षमता, अभिव्यक्ति क्षमता अधिक श्रेष्ठ है।

परसाई जी ने सामाजिक जीवन के संक्षिप्त चित्रों को अत्यंत चतुराई के साथ परिलक्षित किया है। परसाई जी ने सृजन कार्य उस समय आरंभ किया जिस समय समाज संक्रमण काल से गुजर रहा था अतः समाज की विसंगतियों का उनके साहित्य में आना स्वाभाविक ही था।

परसाई जी यथार्थवादी चिंतक है और उनका चिंतन भी मूलतः प्रतिबद्धता को उजागर करता है तथा परसाई जी मार्क्सवादी सिद्धान्तों का समर्थन करते है किन्तु मध्यमवर्ग की मनोवृतियों का यथार्थ चित्रण परसाई जी की रचनाओं में मिलता है। इसका प्रमुख कारण है कि परसाई जी ने जीवन के आरम्भिक समय में काफी संघर्ष किया और वे मध्यमवर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे।

परसाई जी का चिंतन पक्ष अत्यंत मजबूत है एवं आर्थिक रूप से संतृप्त परिवारों का चित्रण उन्होनें बखूबी किया है। परसाई जी ने इसको अच्छी तरह महसूस किया है । परसाई जी ने इसी आधार पर अपनी रचनाओं में मध्यमवर्गीय यथार्थ की सशक्त अभिव्यक्ति की है।

परसाई जी की लेखन प्रक्रिया अत्यन्त सुनियोजित है। परसाई जी परत दर परत जाकर उसकी पूर्ण जाँच पड़ताल करके समस्या का समाधान प्रस्तुत करते है। सतर्क वैज्ञानिक बोध, प्रखर वैचारिकता एवं समस्याओं तथा घटनाओं की पूर्ण जाँच पड़ताल के कारण उनके सम्पूर्णता का एहसास कराते है।

परसाई जी के यथार्थवादी चिंतन में यह बात देखने को मिलती है कि पारम्परिक व पुरानी घिसी–पिटी रुढ़िवादिताओं को वे समाज का एक कीड़ा मानते है। चाहे वह समाज के महापंडितों का पाठ हो या पाखंड अथवा वह ठेकेदारों द्वारा चलायी गयी कुप्रथाये हो, उसे वे समाज का नासूर मानते है और समाज से उसकी जड़ निकाल फेंकने पर भी बल देते है। उन्होंने कहा है कि रुढ़ियों तथा कुप्रथाओं से जुड़ा भारतीय न जाने कितनी त्रासदी भुगतता है और फिर उसे मानने पर मजबूर होता है। परसाई जी ने समाज की इन रुढिवादिताओं को दूर करने के लिये भी बल दिया है।

परसाई जी के कथा साहित्य में सामाजिक चिंतन अधिक स्वभावगतः हो पाया है और परसाई जी द्वारा कथा साहित्य को व्यंग्य के माध्यम से सामाजिक बुराईयों को दूर करने का भी प्रयास किया गया है। उन्होनें समाज के माध्यम से अपनी बात को कहने का प्रयास किया गया है।

परसाई जी के चिंतन में यथार्थपरक बातें हमें देखने को मिलती है और राजनीतिक विचारों के माध्यम से भी उन्होनें सामाजिक बुराईयों को भी उजागर करने का प्रयास किया है। परसाई जी के कथा साहित्य में अवलोकन क्षमता, अभिव्यक्ति क्षमता तथा संवदेनशीलता तीनों ही विद्यमान है और इसी के माध्यम से वे कुशलता पूर्वक तर्क भी प्रस्तुत करते है। अतः उनके रचनाओं में विचारों का संप्रेषण अत्यंत तीव्र एवं स्वाभाविक है।

परसाई जी ने समाज की जो वास्तविक तस्वीर हमारे सामने प्रस्तुत की है शायद ही किसी साहित्यकार ने ऐसा किया हो। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व मुंशी प्रेमचन्द जी द्वारा यह कार्य किया गया था एवं स्वातंत्रोत्तर काल की विविधता पूर्ण बातों को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करने का कार्य परसाई जी द्वारा किया गया। यही कारण है कि **परसाई जी द्वारा हमारे समाज को दिया गया कथा साहित्य विविधता लिये हुये है।**

यथार्थवादी चिंतन में व्यंग्य :-

परसाई जी द्वारा समाज के यथार्थता का चित्रण किया गया है परंतु उनकी विशेषता है -व्यंग्य के माध्यम से यथार्थ का चिंतन करना। व्यंग्य उनके साहित्य में कूट-कूटकर भरा हुआ है और उनके व्यंग्य की विशेषता है गहनता से समस्या का अवलोकन। समाज की विसंगतियों तथा बुराईयों को उन्होनें व्यंग्य के वाणों से भेदा है और उसके निदान को भी हमारे सम्मुख रखा है।

व्यंग्य मूलतः समाज के हित में होता है। व्यंग्य की दृष्टि समग्र रुप से जनहित भावना से ओतप्रोत होती है। व्यंग्यकार का यह उत्तरदायित्व है कि वह अपने युग में व्याप्त समस्त विसंगतियों तथा विषमताओं की आलोचना करें।

व्यंग्यकार बहुधा मानवहित की भावना को ही सार्थक रखकर व्यंग्य करता है। व्यंग्य मानव जीवन का अभिन्न अंग है। परसाई जी ने व्यंग्य की धारा को तीव्र प्रवाहित करने का संकल्प लिया था इसी विचारधारा को उन्होनें आगे भी बढ़ाया।

परसाई जी द्वारा विषय की गहराई को समझकर उसे समाज हित में स्पष्ट करने का भी प्रयास किया गया है। परसाई जी द्वारा व्यंग्य तो किया गया है परन्तु यथार्थ के धरातल पर स्तरीय विषय सामग्री हमारे सम्मुख लाई गयी है।

एक स्थान पर परसाई द्वारा लिखा गया है कि व्यंग्य जीवन से साक्षात्कर करता है, जीवन की आलोचना करता है। विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखंडों का पर्दाफाश करता है। परसाई जी ने जितना भी साहित्य सृजित किया है उसमें मानवीय संवेदना, मूल्यों के विघटन की दुर्बलता को विशेष रुप से उद्‌घाटित किया है। वे एक ईमानदार, स्पष्ट वक्ता, व्यंग्यकार है। हमारे समाज को इस प्रकार के व्यंग्यकार की अत्यंत आवश्यकता है।

परसाई जी ने अपने कथा साहित्य में यथार्थवादी चित्रण ही सर्वाधिक किया है। वे सामाजिक जीवन मूल्यों, नैतिकतावादी विचार एवं जनसामान्य के हितों के प्रबल पक्षधर रहे है और परसाई जी का कथा साहित्य भी हमारे जीवन की आभा को और स्पष्ट करता है। उसे निखारता है। परसाई जी ने व्यंग्य की आड़ में यथार्थ स्थिति और समाज की विसंगतियों को हमारे सम्मुख रखने की कोशिश की है। परसाई जी ने हंसी के कारणों को महत्व नहीं दिया है, मात्र हंसी वाली मनोरंजक विसंगति जीवन व्यापक एवं जटिल संदर्भो को स्पष्ट करने वाली विसंगति व्यंग्य की सीमा से परे है।

परसाई जी का यथार्थवादी चिंतन व्यापक रुप से हमारी विसंगतियों की चेतना को जागृत करता है। एक व्यंग्य रचनाकार इन विसंगतियों को उजागर करता

है उसका पर्दाफाश करता है। परसाई जी ने सामाजिक यथार्थ के साथ-साथ आर्थिक व राजनीतिक यथार्थ का भी चित्रण किया है और उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध मानवीय जीवन से होता है। भारतीय समाज भी वही है जहाँ पहले था बल्कि आज तो अन्तर्विरोध बढ़ता ही जा रहा है तथा जीवन के दोहरे मानदण्ड स्थापित होते जा रहे है।

परसाई जी ने आर्थिक व सामाजिक मापदंड वाले यथार्थ का चित्रण बखूबी किया है वहीं राजनैतिक जीवन से प्रभावित यथार्थ को भी उसी से जोडने की कोशिश की है। इसका प्रमुख कारण रहा है कि कोई भी आर्थिक विसंगति हो वह सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक विसंगति से प्रभावित होती है और इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध मानव जीवन और उसके जीवन मूल्यों से होता है।

वर्तमान व्यंग्यकारों द्वारा समाजवादी दर्शन को अधिक पल्लवित किया है, इसका प्रमुख कारण यही रहा है कि जो भी कथा-वस्तु तथा कथा साहित्य का विषय रहा है वह समाज तथा समाजवादी चित्रण को ही उजागर करता है। समाज का दर्पण हमारे समस्त पहलुओं से सम्बन्धित रहा है, इसका प्रमुख कारण यह है कि जितने भी व्यंग्य रहे पर किसी न किसी रूप में हमारे मानवीय जीवन मूल्यों को प्रभावित करते है।

जनतंत्रात्मक व्यवस्था में व्यक्ति को पूर्ण छूट रहती है वह इस व्यवस्था का सदुपयोग करता है तथा व्यंग्यकार अनुशासनहीनता, विघटन, भुखमरी, बेरोजगारी, अवसरवादिता आदि को आधार बनाकर अपने व्यंग्य को पुष्पित पल्लवित

करता है। परसाई जी ने सामाजिक समस्याओं पर समग्रतः लेखनी चलाई है। जिस समस्या पर उनकी दृष्टि गयी है उसे ही उन्होनें लेखनी द्वारा उभारा है। शायद ही कोई सामाजिक विसंगति अर्न्तविरोध होगा जो परसाई जी के नजरों से छूट गया हो।

सामाजिक चिंतन पर आधारित उनकी रचनाये सर्वाधिक प्रसिद्ध हुई है। बहुधा उनकी रचनायें सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक विसंगतियों पर ही केन्द्रि त है। परसाई जी की कहानियों से समाज का नकारात्मक और ऋणात्मक पहलू भी उभरता है। परसाई जी की रचनाओं में बहुधा समाज का सम्पूर्ण चित्रण हमें मिलता है। उन्होंने उसकी कमजोरियों, गलतियों तथा कमियों का अहसास करा दिया तथा दूसरा उसे उसकी ताकत का अनुभव भी करा दिया, समाज को उसके अधिकारों के प्रति जागरूक भी किया है। उन्होंने सामाजिक यथार्थ की पीड़ा को महसूस भी किया है।

समाज का शायद ही कोई ऐसा वर्ग हो जिस पर परसाई जी की दृष्टि न गयी हो। परसाई जी की कहानियों में समाज के हर वर्ग के सुंदर एवं सार्थक चित्र दिखलाई पड़ते है। परसाई जी का गतिशील चिंतन और जीवनानुभव को स्थापित करने की क्षमता है जो उन्हें आत्म साक्षात्कार करने पर विवश करती है।

अतः हम कह सकते है कि परसाई जी का समाजवादी चिन्तन समाज का जीवंत यथार्थ है और शायद इसीलिये ही आज भी उनकी रचनायें हमारे अधिक समक्ष है। उन्होनें अपनी रचनाओं में आत्म संतुष्टि और समाज को स्वनिर्माण की सीख दी है। वे कहते है कि जब भी कोई विसंगति या दुविधा हो तो स्वयं अपनी

स्थिति को ध्यान में रखो वास्तविकता क्या है और वह कहाँ तक सत्य है, इसकी पूर्ण जानकारी होना आवश्यक भी है।

यही कारण है कि परसाई जी की रचना धार्मिक काफी व्यापक है। और वे आज के युग की अचूक वास्तविकता भी है। समाज का जो चित्रण उन्होंने प्रस्तुत किया है वह बड़ा ही सजग है। समाज भी आज यथार्थवादी चिंतन की ओर ही झुकता है। उन्होनें वर्तमान परिदृश्य को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। उसकी भाव-भंगिमा को उसी रूप में उदाहरण स्वरुप भी दर्शाया है। यही उनकी जीवंतता का परिचायक है।

....

अध्याय - द्वितीय

अध्याय-द्वितीय

:: परसाई जी का रचना संसार ::

(अ) परसाई जी का उपन्यास संसार व कहानियाँ :-

राग-विराग :-

मई की दोपहरी। 'बस-स्टेण्ड' पर बस खड़ी है। मुसाफिर आ रहे हैं और बैठते जा रहे हैं। उच्च श्रेणी में दो-दो मुसाफिरों के बैठने के लिए एक के पीछे एक कई सीटें हैं। हर मुसाफिर की टिकट पर सीट का नम्बर होता है। पर यह एक अजब लोभ है कि बस से घुसते ही कई मुसाफिरों के मन में यह आता है कि किसी दूसरी सीट पर बैठ जायें। उस दिन चौराहे पर तीन-चार पुलिस के सिपाही पान वाले से दस सेर गाँजा पकड़ने की ऐतिहासिक घटना का सगर्व वर्णन कर रहे थे। एक सिपाही बड़े सहज भाव से बोला, ''भैया, उस मामले में कम-से-कम पाँच सौ रुपये मिलते, और किसी को कानों-कान खबर नहीं होती। पर इस बलभद्दर ने कोतवाली ले जाकर सब मटियामेट कर दिया।'' दूसरे की जगह बैठने का इरादा और गाँजा पकड़कर पाँच सौ रुपये घूस लेने का इरादा - दोनों एक ही प्रकार के लोभ हैं - हमारे सामूहिक मन का प्रतिनिधि लोभ।

बस - कण्डक्टर ने मुसाफिरों को उठा-उठाकर उनकी ठीक जगह पर बैठाना आरम्भ कर दिया है। लोग शहीदाना गर्व के साथ अपनी जगह पर बैठ रहे हैं, दूसरों की जगह पर जम जाने का उनका अधिकार जो छिन गया।

एक व्यापारी थलथलाते हुए आ रहे हैं, दुर्भाग्य से मेरे परिचित। कभी किसी का मिलना सौभाग्य बन आता है, पर कभी, उन्हीं का मिलना दुर्भाग्य। निमोनिया में मुरब्बा प्राणघातक है। वैसे मुरब्बा बहुत अच्छी चीज है। सफर में 'बोर' व्यापारी निमोनिया में मुरब्बे की तरह ही है। वे तो दुकान पर ही भले लगते हैं।

पर मुझे देखकर वे खिल उठे, ''अच्छा आप भी चल रहे हैं?'' कहकर मेरी बगल की खाली जगह पर आ बैठे। बस ड्राइवर को देखकर गद्‌गद हो बोले, ''अच्छा, वजीर मियाँ, आप चल रहे हैं आज?'' वजीर मियाँ शायद उन्हें पहचानते नहीं हैं, पर वे इस विश्वास और आत्मीयता से वजीर मियाँ को गले लगा लेना चाहते हैं कि अगर बस कहीं किसी झाड़ से टकरा गयी तो वजीर मियाँ सबको मर जाने देंगे, सिर्फ उन्हें बचा लेंगे।

वे मेरी ओर मुड़े और अपने भतीजे के लिए किसी स्कूल से झूठा सर्टिफिकेट प्राप्त करने की योजना पर विचार करने लगे। एक आँख बन्द करके अँगूठे पर पहली उँगली से चोट करके बोले, ''कुछ खर्च करना पड़े तो पीछे नहीं हटेंगे।'' उनके उद्देश्य की 'शुचिता' के साधन रूप में अपना मेल होते देख मैं तनिक अकुलाया। पर इसी समय कण्डक्टर मेरा 'मसीहा' बन गया। उसने उन्हें उठाकर मुझसे काफी दूर, उनकी ठीक जगह पर, बैठा दिया।

अब मेरे पास एक युवक आकर बैठ गया है। हाथ में एक फिल्मी पत्रिका है। अब मैं बिल्कुल सुरक्षित हूँ। जिसके हाथ में फिल्मी पत्रिका है, वह बगल में बैठे भगवान् से भी बात नहीं करेगा।

सीटें लगभग भर चुकी हैं। सिर्फ मेरे पीछे की एक सीट पर एक जगह खाली है। अभी केवल एक सन्यासी बैठे हैं, चालीस-पचास साल के होंगे, वैसे वे अपने को अस्सी-नब्बे साल का बताते हैं। पुराना चावल और पुराना सन्यासी - दोनों कीमती होते हैं। तभी 'वेश्या बरस घटावहिं योगी बरस बढ़ाहिं।' अच्छे सुडौल हैं। ताजे कटे लॉन की तरह उनकी खोपड़ी और दाढ़ी ! माथे पर तिलक, गले में कण्ठी। गेरुआ रंग अब सफेद होने लगा है।

सन्यासी को देखकर लोगों के मन में एक कुतूहलमय सम्मान जागता है। अगर सन्यासी ऊँचे क्लास में सफर कर रहा हो तब तो और सम्मान पाता है और अगर अंग्रेजी भी बोल लेता हो, तब तो लोग न्योछावर होते हैं। पर बेचारे सन्यासी के मुख पर मैंने अकसर परेशानी, निराशा, ग्लानि और असन्तोष देखा है। लोगों की नजरों में वह चाहे पूज्य हो पर अपनी नजरों में वह केवल दयनीय ही होता है। संसारियों पर घृणा की दृष्टि डालकर वह इस दयनीयता को अपनी ही नजरों से छिपाने की कोशिश करता है। पर उसकी आँखों में तो वह खिड़की खोलकर बैठी रहती है।

सन्यासी गीता पढ़ रहे हैं :

''यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत''

और मेरे बगल में बैठा युवक अभिनेत्री सुरैया का नवीनतम चित्र देख रहा है। दोनों एक ही अप्राप्य काल्पनिक आनन्द में लीन हैं। दोनों एक मृग-तृष्णा के

शिकार ! जैसी इसकी सुरैया, वैसे उसके भगवान् ! दोनों दूर बहुत दूर, स्वप्नवत् अलभ्य, बे-जाने पहचाने !

सन्यासी ने आगे झुककर नवयुवक की फिल्मी पत्रिका को देखा और घृणा से मुँह फेर लिया।

नवयुवक सन्यासी के श्लोकों से परेशान होकर खीझ से बुदबुदाया : ''व्हाट एक न्यूसेन्स – कैसी परेशानी है ?''

बस अब चलने ही वाली है। मेरे परिचित व्यापारी ने पीछे की सीट से एक पान के अष्टमांश हिस्से का बीड़ा बनाकर मेरी ओर बढ़ाया, मानो चेतावनी दे रहा है कि किसी भी क्षण आक्रमण कर दूँगा ।

एक रिक्शा आकर रुका और उसमें से एक महिला फुर्ती से निकली। शरीर कीमती साड़ी में लिपटा, हाथ में बैग। यौवन का ज्वार अब भाटा हो रहा है, यही पैंतीस वर्ष के आसपास होगी। सुडौल मुख, पानीदार आँखे, मुद्रा में संकोचहीनता, चाल में स्वाभाविक सत्ता की दृढ़ता। वह बस में घुसी और कण्डक्टर से पूछा, ''मेरी सीट ? नम्बर 8 की टिकिट है।'' कण्डक्टर ने सन्यासी के बगल की खाली सीट की ओर संकेत कर दिया। सारी बस में वही सीट खाली थी।

स्त्री बढ़ी और सन्यासी के बगल में बैठने का उपक्रम करने लगी। इधर सन्यासी पर जैसे बिजली गिर पड़ी। हाथ जोड़कर बोले, ''नहीं-नहीं देवी ! यहाँ पर मत बैठो, कहीं और बैठ जाओ।'' स्त्री ठिठक गयी। उसने कण्डक्टर की ओर

देखा। कण्डक्टर ने कहा, ''महाराज जी और सीट तो खाली नहीं है। वे कहाँ बैठेगी ? वह सीट तो उन्हीं की है।''

सन्यासी ने अत्यन्त दीन नयनों से उसकी ओर देखा। कहा, ''नहीं-नहीं भैया, मैं स्त्री के पास नहीं बैठ सकता। स्त्री का संग मुझे वर्जित है। मैं सन्यासी ठहरा।''

मुसाफिरों का ध्यान सन्यासी की ओर खिंच गया। सबके नयनों में उत्सुकता है। गरमी और बस की नीरसता में मन-बहलाव का एक जरिया तो मिला। स्त्री कहीं और भी बैठ सकती है, किसी अन्य मुसाफिर को वहाँ बैठा दिया जा सकता है और कितने लोग उम्मीद उगाये बैठे होंगे कि ऐसे सीट विनिमय में हमें ही स्त्री का सामीप्य लाभ हो जाये। पुरुषों से भरी बस में स्त्री। जैसे विस्तृत रेगिस्तान में एक झरना। पर सन्यासी की कातरता और दीनता का मजा सभी ले रहे थे। वह स्त्री भी वहीं अड़ी रही। कण्डक्टर भी हठ करने लगा। और हम लोग आँखे फाड़े ही थे। विश्वामित्र मेनका ! शुक-रम्भा !

पर स्त्री बड़ी प्रगल्भा निकली। संकोच जैसे वह जानती ही नहीं है। वह कहने लगी, ''महाराज, आप तो पिता-तुल्य हैं। मैं एक किनारे बैठ जाऊँगी। सन्यासी के ही पास तो हम निर्भय और निःसंकोच बैठ सकती है।'' हम सब चकित हैं। कैसी वाचाल है !

सन्यासी बोले, ''नहीं, नहीं देवी, मुझे संकट में न डालो। मेरे गुरु की आज्ञा है। माता और पुत्री का संग भी हमारे लिए निषिद्ध है। धर्म का आदेश है।''

स्त्री अब तमतमा गयी है। उसने बड़े रोष और घृणा से कहा, ''महाराजजी, जो धर्म माता और पुत्री से डरने के लिए कहता है, वह धर्म नहीं हो सकता। वह पाखण्ड है।''

सन्यासी अब हत-तेज हो गये हैं। उन्हें उत्तर नहीं सूझ रहा। इसी समय मैंने कह दिया, ''सन्यासीजी, बैठ जाने दीजिए न ! आप तो वीत राग है।''

इसी समय पुलिस के सिपाही ने ड्राइवर से कहा, ''वजीर मियाँ, चलो स्टार्ट करो। पाँच मिनिट लेट हो गयी है।''

भीतर से मुसाफिर चिल्लाये, ''अरे भाई, गरमी में यहीं मार डालोगे क्या, स्टार्ट करो गाड़ी।''

ड्राइवर ने बटन दबाया। घरघराहट हुई और बस खिसकी। इस गड़बड़ में वह स्त्री सन्यासी के बगल की उसी सीट पर बैठ गयी। सन्यासी एकदम बस दीवार से सटकर, दुबककर बैठ गये। उन्होंने बड़े कातर नेत्रों से हम लोगों की ओर देखा। वह नारी बड़ी बेफिक्री से बैठी थी।

बस अब चलने लगी है। सन्यासी वैसे ही दुबके, भयभीत एक कोने में बैठे हैं, जैसे बगल में सिहनी सो रही है, जो यदि जाग गयी तो प्राण ले लेगी। उन्होंने जोर-जोर से गीता पढना आरम्भ कर दिया।

''कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ....।''

बचपन की याद मुझे आ गयी। शाम को खेलकर घर लौटता तो भुतही इमली के नीचे से निकलना पड़ता था। भूत से बचने के लिए मैं खूब जोर से गाना

गाता था। मेरे गाने से भूत भागता था या नहीं, यह तो नहीं जानता, पर मेरे मन का भय जरूर भाग जाता था। सन्यासी जोर–जोर से गीता पाठ कर रहे हैं, मुझे अपने उसी 'भूत भगाऊ' गाने की याद आ गयी।

वे गीता पढ़ रहे हैं। सोचता हूँ, जो किसी पुस्तक को बार–बार पढ़ता है वह समझकर तो ऐसा नहीं कर सकता। अच्छे से अच्छे ग्रन्थ को कोई समझकर पढ़े तो दो–चार बार पढ़ सकता है। पर जो बार–बार उसे पढ़ता है, रोज एक बार पाठ कर जाता है, वह जरूर बिना समझे ही पढ़ता है। जिन्दगी–भर से सन्यासी जी गीता पढ़ रहे हैं, जैसे हलवाई जिन्दगी भर मिठाई बनाता और बेचता है। पर मिठाई देखकर कभी हलवाई की जीभ में तो पानी नहीं आता। सन्यासी भी गीता से बिल्कुल निर्लिप्त रहकर गीता पढ़ लेते हैं, जैसे ग्रामोफोन का रिकार्ड आरती गाता है। उनका स्वर काफी तेज हो गया है। ज्यों–ज्यों 'भुतही इमली' नजदीक आती जाती, मैं भी अपने गाने का स्वर बढ़ाता जाता था।

सन्यासी ने मेरी पुस्तक की ओर देखा। पूछा, ''धार्मिक पुस्तक है ?'' मैंने कहा, ''नहीं कहानी की है।'' सन्यासी ने घृणा से मुँह फेर लिया।

अब मुसाफिरों का ध्यान सन्यासी की ओर नहीं है। कुछ पढ़ रहे हैं, कुछ ऊँघ रहे हैं, कुछ जाली के उस पार बैठी तरुणियों पर आँखें लगाये हैं, और जिन्हें कुछ नहीं मिलता वे बेचारे गर्दिश के मारे इस निर्भय प्रौढ़ा की ओर देख लेते हैं।

रास्ते में एक कुआँ दिखा तो सन्यासी ने बस रुकवायी। कमण्डलु लेकर कुएँ पर पहुँचे, पानी पिया और भरते लाये। उस स्त्री से पूछा, ''देवी, पानी पियेंगी ?'' स्त्री ने अनिच्छा से एक गिलास पानी पी लिया। हम लोगों को सन्यासी पर अब बड़ी दया आने लगी है।

पचीसों मील निकल गये। सन्यासी माला फेर रहे हैं। एकदम चौंककर दीन वाणी में बोले, ''देवी क्षमा !'' शायद माला फेरते-फेरते हाथ लग गया होगा सन्यासी का।

मील पर मील निकलते जा रहे हैं। सन्यासी का पाठ जारी है। स्त्री भी एक किताब पढ़ रही है। बीच-बीच में एकदम किताब बन्द कर देती है। बड़ी परेशानी से आसपास देखती है। वह खीझकर बोली, ''महाराज, जरा ठीक से बैठो।'' सन्यासी ने हाथ जोड़कर कातर वाणी में कहा, ''देवी क्षमा करना, ध्यान में डूब गया था।''

फिर पचीसों मील निकल गये। सन्यासी ने अब स्थिति के साथ समझौता कर लिया है, पर स्त्री परेशान हो गयी है। ज्यों-ज्यों सन्यासी परिस्थिति के साथ समझौता करते जाते हैं, त्यों-त्यों स्त्री की परेशानी बढ़ती जाती है।

सन्यासी अब एक ही श्लोक को बार-बार कह रहे हैं। एक बार, दो बार, तीन बार, आठ बार। उनका स्वर टूटा है, उच्चारण में अटपटापन है, गले में खर खराहट ! मैंने पीछे देखा कि कहीं सन्यासी ऊँघ तो नहीं रहे हैं। नहीं, वे तो खूब आँखे फाड़े बैठे हैं। मुझसे आँखें मिली तो एकदम चौंककर श्लोक बदला। बड़ी फुर्ती से दो-तीन आगे के श्लोक पढ़ गये।

अब फिर एक श्लोक बार-बार कह रहे हैं। स्वर टूटता हुआ, उच्चारण अटपटा, गले में खरखराहट। निःश्वास की गति बहुत तीव्र है। गीता अँगुलियों में फिसलकर लगभग उलटी हो गयी है।

बस चली जा रही है। जोगी और भोगी को एक गति से ले जा रही है। धुँधल का होने लगा है। बस में मन्द प्रकाश में पढना संभव नहीं है। मैनें किताब बन्द कर दी है। सफर में अंधेरा होते ही नींद आने लगी है। लोग उँघने लगे है। मेरा पड़ोसी युवक अब भी किसी अभिनेत्री का चित्र देखने में मशगूल है। संन्यासी जी का अटपटा पाठ चल रहा है। कभी चौथे अध्याय का श्लोक बोल देते है, कभी दूसरे का। उनका सिलसिला टूट गया है। उस ओर मेरे परिचित सेठ हथेली पर सिर रखे उँघ रहे है। वजीर मियाँ वैसे ही मुस्तैदी से बैठे है। उस सीट पर के वृद्ध सज्जन ने ड्राइवर की सीट तक टाँगें फैला ली है। सब शान्त है। सब ऊबे है। बाहर की प्रकृति भी ऊबी-ऊबी-सी लगती है। घरघराहट और सन्यासी का गीता-पाठ इन दोनों में ही होड़ है।

स्त्री बहुत परेशान है। वह एकदम अपनी सीट से उठी। चिल्लायी, ''गाडी रोको।'' वजीर मियाँ ने गाड़ी रोक दी। ''क्यों, क्या बात है बाई ?'' उसने पूछा।

सन्यासी ने कहा, ''क्यों, क्यों ? देवी बैठ जाओ ?''

स्त्री ने संन्यासी को एक चाँटा मारा और बोली, ''लुच्चा बदमाश कहीं का !'' फिर कण्डक्टर से बोली, ''मुझे और कहीं बिठा दो भैया।''

बेईमानी की परत :-

कपड़ा पहिनते-पहिनते छोटा हो जाता है, यह मैं भूल चुका था। कई सालों से ऐसी घटना ही नहीं घटी थी। मैं उनमें से नहीं रहा, जो इस साल पैण्ट सिलवाते है और अगले ही साल उसे पत्नी की पुरानी साड़ी की किनार से बाँधने लगते है। उच्चवर्गी और मध्यवर्गी में यही अन्तर है। उच्चवर्गी का पैण्ट जब छोटा होता है, तो वह उसे आगे के लिये छोड़ देता है। पर मध्यमवर्गी का कुछ 'आगे' के लिये नहीं होता, इसलिये वह स्त्री की फटी साड़ी की किनार खोजने लगता है।

ठण्ड शुरु होने पर मैंने गरम शेरवानी निकालकर पहिनी तो देखा कि बटनें नहीं लगतीं। पिताजी जब मेरे कपड़े सिलाने देते थे, तो दर्जी से कह देते थे – जरा बढ़ते शरीर का बनाना। जब से अपने कपड़े बनवाने का जिम्मा खुद लिया है, हर बार दर्जी से कहना चाहता हूँ – जरा घटते शरीर का बनाना। शरीर जब तक दूसरों पर लदा है, तब तक मुटाता है। जब अपने उपर चढ जाता है, तब दुबलाने लगता है। जिन्हें मोटे रहना है, वे दूसरों पर लदे रहने का सुभीता कर लेते है – नेता जनता पर लदता है, साधु भक्तों पर, आचार्य महत्वाकांक्षी छात्रों पर और बड़ा साहब जूनियरों पर।

मुझे ऐसा कोई आसन नहीं मिला। फिर भी कुछ मोटा हो जाने की इच्छा मरी नहीं। जब भी सफर करता, रेलवे प्लेटफॉर्म पर वजन तौलने की

मशीन में दस पैसे डालकर वजन का टिकिट निकलता। टिकिट के दूसरे तरफ भाग्य-फल लिखा है, जो अकसर इस पैसे के बदले में की गयी चापलूसी होता है। इस देश की मशीनें भी चापलूसी करना सीख गयी है। सिर्फ दस पैसे में कुछ बातें कहती है – 'आपके विचार बहुत ऊँचे है। आप उनके अनुसार कार्य करेगें, तो सफल होगें।' मैं कहता हूँ – सिस्टर, कभी तो सच बोला करो। यह कोई तुम्हारा 'स्टेंडर्ड' है कि सिर्फ दस पैसे में – ! मशीनों की राय पर मैं ज्यादा भरोसा नहीं करता, विशेषकर उन पर जो आदमी को तौलने के लिये जगह-जगह रखी हुई है। इनके मुँह में दस पैसे डाल दो तो तारीफ का एक वाक्य बोल देती है।

इसलिये मैं किसी इनाम के लिये कभी किताब नहीं भेजता। और समीक्षकों के घरों में पुत्र-जन्म होते रहते है, पर मैं बधाई के कार्ड नहीं लिख पाता। नतीजा यह कि वजन बढता भी है, तो किसी मशीन की टिकिट पर रिकार्ड नहीं होता। जमाने में वजन से ज्यादा उसके रिकार्ड का महत्व है। इसलिये चतुर लोग दूसरे की गोद में बैठकर अपने को तो तुलवा लेते है, और बढ़े वजन का टिकिट जेब में रखे रहते है।

इस बार जरूर वजन बढा है। अब मशीन की धाँधली नहीं चलेगी। मुटाई के अहसास ने शरीर में ऐसी सनसनी पैदा की कि जी हुआ फैलकर शेरवानी को तार-तार कर दूँ और ठण्ड उघाड़े बदन गुजार दूँ।

फिर मैं झेंपा भी। वजन बढना तो लड़कपन की हरकत है। कोई प्रौढ़ आदमी भी इस जमाने में क्यों मोटा होगा ? लोग क्या सोचेगें ? अनाज की दुकानों के सामने थैला हाथ में लिये कतार में खड़ा आदमी सूख रहा है। जब तक उसका नम्बर आता है, दाम बढ़ जाते है और घर से लाये पैसे कम पड़ जाते है। साधारण आदमी भी जहाजों के टाइम-टेबिल याद रखने लगा है। अमेरिका से जहाज़ आयेगा तो उसमें हमारे लिये गेहूँ होगा, जापान से आयेगा तो चावल होगा। अमेरिका में जहाजी कर्मचारियों की हड़ताल से भारतीय जन चिन्तित हो जाता है। भुखमरी से हममें अन्तराष्ट्रीय चेतना आ गयी। अगर अकाल पड़ जाये, तो हर भारतीय अपने को विश्व-मानव समझने लगेगा।

यह वक्त भी कहीं मोटे होने का है ! मैं शर्म से कमरे में छिपा बैठा रहा, जैसे कुमारी गर्भ को छिपाती है। मेरे देशवासियों, मुझ बेशर्म को माफ करना। भारत माता, क्षमा करना, तेरा यह एक कपूत मोटा हो गया। मैं तीसरी पंचबर्षीय योजना का एक झूठा आँकड़ा हूँ' जो तुम्हें धोखा दे रहा है। सुब्रमन्यम, माफ करना यार, तुम्हारी खाद्य-व्यवस्था के बावजूद मैं मोटा हो गया। टी. टी. भाई, तुम भी मुझे माफ ; मैंनें तुम्हारी अर्थ-नीति का अपमान किया है। कन्हैयालाल मुंशी, अजितप्रसाद जैन, साधोबा पाटिल - मेरे पिछले खाद्य मन्त्रियों, तुम्हारे सामने मैं शर्मिन्दा हूँ। चिन्तामन देशमुख और मोरारजी भाई, मेरे भूतपूर्व अर्थ मन्त्रियों, मैं तुम्हें मुँह दिखाने के काबिल नहीं रहा। मैं पिछले 15 वर्षो की उलझी अर्थ-नीति और खाद्य-नीति के प्रति अपराधी हूँ।

ग्लानि से दुबला होने में देर लगती है और पानीदार ही दुबला होता है। मुझे इस बढ़े शरीर की व्यवस्था करनी ही होगी। शेरवानी को खुलवाना ही पड़ेगा। मैनें छोटे भाई से कहा। वह बहुत खुश हुआ और मुहल्ले में जितने लोगों को सूचित कर सकता था, कर आया कि मेरा भाई मोटा हो गया है। मैं डरा कि अभी लोग आयेगें और कहेगें – सुना है साहब, आप मोटे हो गये। बधाई है। ईश्वर सबको इसी तरह मोटा करें।

लेकिन शाम तक मैंने लज्जा-भाव को जीत लिया। इसमें क्या शर्म की बात है। मोटा हुआ है, तो मेरा ही शरीर हुआ है। मेरे कारण कोई दूसरा मोटा नहीं हुआ। मैं इशारे से इस उपलब्धि को बताने भी लगा। दोस्त ठण्ड की बात करते तो मैं बीच में कह देता – हाँ, ठण्ड सिर पर आ गयी और हमारे गर्म कपड़े छोटे पड़ गये। बटनें नहीं लगतीं।

दो-तीन दिनों में यह बात फैल गयी और मेरे एक बुजुर्ग रिश्तेदार यह कहते मेरे घर आये – लड़के ने बताया कि तुम मोटे हो गये। मैंने सोचा, चलो, देख आयें।

दुर्बलता का मैं अभ्यस्त हो गया था। गर्वपूर्वक दुबला रह लेता था। कोई ऋषि मोटा नहीं हुआ। वे सब सूखे और क्रोधी होते थे। कोई उनके चरण न छुए तो उसे शाप देकर बन्दर बना देते थे। पर न मैं वैसा दुबला था, न वैसा क्रोधी। मैं 'आजानुभुज' और 'आकण्ठटाँग' वाला हूँ– याने बैठने में टाँगें कण्ठ तक आ पहुँचती है। सोचता था, भुजाओं और टाँगों का जो अतिरिक्त भाग है, वह

बाकी शरीर में चिपका दिया जाय, तो ठीक हो जाय। पुराने जमाने में सन्दरियों के लिये ऐसी सर्जरी होती होगी कि इस अंग का कुछ काटकर उस अंग में चिपका दिया। प्रमाण चाहिये तो बिहारी की यह पंक्ति काफी है – 'कटि को कंचन काटि कै, कुचन मध्य धरि दीन।' (इससे दोनों ठीक हो गये) एक और तरह की सर्जरी है, जिसमें विना चाकू के पेट काटा जा सकता है। वर्तमान सभ्यता में इस रक्तहीन सर्जरी ने काफी उन्नति की है। जो दस-पाँच के पेट काट सके उसका पेट बड़ा हो जाता है। वे सारे पेट उसके पेट में चिपक जाते है। इस विद्या के विद्यालयों में मुझे प्रवेश नहीं मिला, वरना मैं भी यह सर्जरी सीख लेता और पेट बढा लेता।

यों हमारी पूरी दार्शनिक ट्रेनिंग देह के खिलाफ जाती है। देह की सेवा बड़ी हीन बात मानी गयी है। दो-तीन साल पहिले एक मठाधीश स्वामीजी ने हमें यह बात अच्छी तरह समझा दी थी। वे अच्छे पुष्ट और गौरवर्ण संन्यासी थे। तख्त पर बैठे थे और देह की तुच्छता पर ऐसा जोरदार प्रवचन कर रहे थे कि हमें अपने शरीर से घृणा होने लगी थी। अच्छे उपदेशक वे, जो अच्छी चीज के प्रति नफरत पैदा कर देते है। वे कह रहे थे – 'यह मलमूत्र की खान, यह गन्दा शरीर मिथ्या है, नाशवान है, क्षणभंगुर है। मूरख इसे स्वादिष्ट पकवान खिलाते है, इसे सजाते है, इस पर इत्र चुपड़ते है। वे भूल जाते है कि एक दिन यह देह मिट्‌टी में मिलेगी और इसे कीड़े खायेगें।' इतने में एक सेवक केसरिया रबड़ी का गिलास लाया और स्वामी जी ने उसे गटक लिया। मेरे पापी मन में शंका उपजी। पर पास में बैठे एक भक्त ने समझाया – यह मत समझ लेना कि स्वामीजी स्वादिष्ट रबड़ी

खाते है। अरे, वे तो कीड़ो–मकोड़ो के खाने के लिये देह को पुष्ट और स्वादिष्ट बना रहे है। इस मृत देह को कीड़े खायें, तो उन्हें भी मजा आ जाये – यही सोचकर स्वामीजी रबड़ी पीते है। श्रद्धाहीन सोचते है कि स्वामीजी माल खाते है; यह नहीं जानते कि वे तो कीड़ों के लिये 'डिनर' बनाने में लगे है।

वह उपदेश आज काम आया। सन्तोष भी हुआ कि अगर स्वामीजी का 'मेनू' पहिले दर्जे का है तो मेरा भी दूसरे का तो हो ही गया। मैं मिथ्या गर्व से बच गया। जो खुशी थी, वह लोगों के सवालों ने छीन ली। लोग पूछने लगे – मोटे हो रहे हो। क्या बात है ? मैं क्या जबाव देता। कह दिया – स्वास्थ्य का खयाल रखता हूँ। वह जो स्वामी शिवानन्द की किताब है न, उसी के मुताबिक चल रहा हूँ। उसमें लिखा है – समय पर भोजन करना चाहिये, सूर्यास्त के बाद चाय नहीं पीनी चाहिये, अधिक रात तक नहीं जागना चाहिये, हल्का भोजन करना चाहिये, मदिरा आदि मादक द्रव्यों का सेवन नहीं करना चाहिये, मिर्च–मसाले नहीं खाना चाहिये, मन में बुरे विचारों को नहीं आने देना चाहिये।

किसी को सन्तोष नहीं हुआ। लोग कहते – मजाक छोड़ो। सच बताओ, मोटे क्यों हो रहे हो ? पीठ–पीछे जब कोई यह प्रश्न करते, तो वह कँटीला हो जाता। वे आपस में कहते – वह आजकल मुटा रहा है। क्या बात है ? मैं इस सवाल से घबड़ा उठा। मैं जब दुबला था, तब किसी ने प्रधानमन्त्री से नहीं पूछा कि यह शख्स दुबला क्यों है। किसी ने संविधान नहीं देखा कि इसमें नागरिकों के

कर्त्तव्यों में दुबला होना लिखा है या नहीं। हम सबने दुबले होने को अपनी नियति मान लिया है। कोई मोटा हो जाता है, तो हजार अँगुलियाँ उठने लगती है। लोग यह समझ रहे थे कि या तो मैं गॉजा-शराब के 'स्मगलिंग' में लगा हूँ या किसी संस्था का मन्त्री बनकर चन्दा खा रहा हूँ या कहीं से काला पैसा ले रहा हूँ, या घूसखोरी के लिये किसी का एजेण्ट हो गया हूँ। रोटी खाने से कोई मोटा नहीं होता, चन्दा या घूस खाने से मोटा होता है। बेईमानी के पैसे में ही पौष्टिक तत्व बचे है।

पिछले १७ सालों से मोटे होनेवालों ने ऐसी परम्परा डाली है कि ईमानदार को मोटा होने में डर लगता है। स्वस्थ रहने की हिम्मत नहीं होती।

मेरे एक दोस्त ने मुझे बताया है कि जिनकी तोंदे इन १७ सालों में बढी है, जिनके चेहरे सुर्ख हुये है, जिनके शरीर पर माँस आया है, जिनकी चर्बी बढी है - उनके भोजन का एक प्रयोगशाला में विश्लेषण करने पर पता चला है कि वे अनाज नहीं खाते थे; चन्दा, घूस, काला पैसा, दूसरे की मेहनत का पैसा या पराया धन खाते थे। इसलिये जब कोई मोटा होता दिखता है, तो सवाल उठते है। कोई विश्वास नहीं करता कि आदमी अपनी मेहनत से ईमान का पैसा कमाकर भी मोटा हो सकता है।

बेईमानी की तरह यह थोड़ा-सा माँस मेरे ऊपर चिपक गया है। मेरे दुश्मनों, एक वैज्ञानिक तथ्य तुम्हारे सामने है। मैं मोटा होकर कमजोर हो गया हूँ। मेरी बदनामी उड़ाने का ऐसा सुनहरा अवसर तुम्हें कभी नहीं मिलेगा। तुम

जल्दी करो। मेरा क्या ठिकाना है ? मैं चार दिनों बाद फिर दुबला हो जाऊँगा। तब तुम हाथ मलते रह जाओगे।

अपनी-अपनी बीमारी :-

हम उनके पास चन्दा माँगने गये थे। चन्दे के पुराने अभ्यासी का चेहरा बोलता है। वे हमें भाँप गये। हम भी उन्हें भाँप गये। चन्दा माँगने वाले और देने वाले एक-दूसरे के शरीर की गन्ध बखूबी पहचानते है। लेने वाला गन्ध से जान लेता है कि यह देगा या नहीं। देने वाला भी माँगनेवाले के शरीर की गन्ध से समझ लेता है कि यह बिना लिये टल जायेगा या नहीं। हमें बैठते ही समझ में आ गया कि ये नहीं देगें। वे भी शायद समझ गये कि ये टल जायेगें। फिर भी हम दोनों पक्षों को अपना कर्त्तव्य तो निभाना ही था। हमने प्रार्थना की तो वे बोले - आपको चन्दे की पड़ी है हम तो टैक्सों के मारे मर रहे है।

सोचा, यह टैक्स की बीमारी कैसी होती है बीमारियाँ बहुत देखी है - निमोनिया, कालरा, कैंसर जिनसे लोग मरते है। मगर यह टैक्स की कैसी बीमारी है जिससे वे मर रहे थे ! वे पूरी तरह से स्वस्थ और प्रसन्न थे। तो क्या इस बीमारी में मजा आता है ? यह अच्छी लगती है, जिससे बीमार तगड़ा हो जाता है। इस बीमारी से मरने में कैसा लगता होगा ? अजीब रोग है यह। चिकित्सा-विज्ञान में इसका कोई इलाज नहीं है। बड़े-से-बड़े डाक्टर को दिखाइए और कहिये - यह आदमी टैक्स से मर रहा है। इसके प्राण बचा लीजिये। वह कहेगा - इसका हमारे पास कोई इलाज नहीं हैं। लेकिन इसके भी इलाज करने वाले होते है, मगर वे

एलोपैथी या होम्योपैथी पढ़े नहीं होते। चिकित्सा-पद्धति अलग है। इस देश में कुछ लोग टैक्स की बीमारी से मरते है और काफी लोग भुखमरी से ।

टैक्स की बीमारी की विशेषता यह है कि जिसे लग जाये वह कहता है - हाय, हम टैक्स से मर रहे है। और जिसे न लगे वह कहता है - हाँ, हमें टैक्स की बीमारी ही नहीं लगती। कितने लोग है जिनकी महत्त्वाकांक्षा होती है कि टैक्स की बीमारी से मरे, पर मर जाते है निमोनिया से। हमें उन पर दया आयी। सोचा, कहें कि प्रापर्टी समेत यह बीमारी हमें दे दीजिये। पर वे नहीं देते। यह कम्बख्त बीमारी ही ऐसी है कि जिसे लग जाये, उसे प्याशी ही हो जाती है।

मुझे उनसे ईष्या हुई। मैं उन जैसा ही बीमार होना चाहता हूँ। उनकी तरह ही मरना चाहता हूँ। कितना अच्छा होता अगर शोक-समाचार यों छपता - बड़ी प्रसन्नता की बात है कि हिन्दी के व्यंग्य लेखक हरिशंकर परसाई टैक्स की बीमारी से मर गये। वे हिन्दी के प्रथम लेखक है जो इस बीमारी से मरे। इस घटना से समस्त हिन्दी संसार गौरवान्वित है। आशा है, आगे भी लेखक इसी बीमारी से मरेगें।

मगर अपने भाग्य में यह कहाँ। अपने भाग्य में तो टुच्ची बीमारियों से मरना लिखा है।

उनका दुख देखकर मैं सोचता हूँ, दुख भी कैसे-कैसे होते है। अपना-अपना दुख अलग होता है। उनका दुख था कि टैक्स मारे डाल रहे है। अपना

दुख है कि प्रापर्टी ही नहीं है, जिससे अपने को भी टैक्स का सौभाग्य प्राप्त हो। हम कुल 50 रुपया चन्दा न मिलने के दुख से मरे जा रहे थे।

मेरे पास एक आदमी आता था, जो दूसरों की बेईमानी की बीमारी से मरा जाता था। अपनी बेईमानी प्राणघातक नहीं होती, बल्कि संयम से साधी जाय तो स्वास्थ्यवर्द्धक होती है। कई पतिव्रताएँ दूसरी औरतों के कुलटापन की बीमारी से परेशान रहती है। वह आदर्श-प्रेमी आदमी था। गाँधीजी के नाम से चलने वाले किसी प्रतिष्ठान में काम करता था। मेरे पास घण्टों बैठता और बताता कि यहाँ कैसी बेईमानी चल रही है। कहता - युवावस्था में मैंने अपने को समर्पित कर दिया था। किस आशा से इस संस्था में गया और क्या देख रहा हूँ। मैंने कहा - भैया, युवावस्था में जिन्होंने समर्पण कर दिया वे सब रो रहे है। फिर तुम आदर्श लेकर गये ही क्यों ? गाँधीजी दुकान खोलने का आदेश तो मरते-मरते दे नहीं गये थे। मैं समझ गया, उसके कष्ट को। गाँधीजी का नाम प्रतिष्ठान में जुड़ा होने के कारण वह बेईमानी कर नहीं पाता था और दूसरों की बेईमानी से बीमार था। अगर प्रतिष्ठान का नाम कुछ और हो जाता तो वह भी औरों जैसा करता और स्वस्थ रहता। मगर गाँधीजी ने उसकी जिन्दगी बरबाद की थी। गाँधीजी विनोबा-जैसों की जिन्दगी बरबाद कर गये।

बड़े-बड़े दुख है ! मैं बैठा हूँ। मेरे 2-3 बन्धु बैठे है। मैं दुखी हूँ। मेरा दुःख यह है कि मुझे बिजली का 40 रुपये का बिल जमा करना है और मेरे पास इतने रुपये नहीं है।

तभी एक बन्धु अपना दुख बताने लगता है। उसने 8 कमरों का मकान बनाने की योजना बनायी थी। 6 कमरे बन चुके है। 2 के लिये पैसे की तंगी आ गयी है। वह बहुत-बहुत दुखी है। वह अपने दुख का वर्णन करता है। मैं प्रभावित नहीं होता। मगर उसका दुख कितना विकट है कि मकान को 6 कमरों का नहीं रख सकता! मुझे उसके दुख से दुखी होना चाहिये, पर नहीं हो पाता। मेरे मन में बिजली के बिल के 40 रु. का खटका लगा है।

दूसरे बन्धु पुस्तक-विक्रेता है। पिछले साल 50 हजार की किताबें पुस्तकालयों को बेची थीं। इस साल 40 हजार की बिकीं। कहते है - बड़ी मुश्किल है। सिर्फ 40 हजार की कितावें इस साल बिकीं। ऐसे में कैसे चलेगा? वे चाहते है, मैं दुखी हो जाऊँ, पर मैं नहीं होता। इनके पास मैंने अपनी 100 कितावें रख दी थी। वे बिक गयीं। मगर जब मैं पैसे माँगता हूँ, तो वे ऐसे हँसने लगते है जैसे मैं हास्यरस पैदा कर रहा हूँ। बड़ी मुसीबत है व्यंग्कार की। वह अपने पैसे माँगे, तो उसे भी व्यंग्य-विनोद में शामिल कर लिया जाता है। मैं उनके दुख से दुखी नहीं होता। मेरे मन में विजली कटने का खटका लगा हुआ है।

तीसरे बन्धु की रोटरी मशीन आ गयी। अब मोनो मशीन आने में कठिनाई आ गयी है। वे दुखी है। मैं फिर दुखी नहीं होता।

अन्ततः मुझे लगता है कि अपने बिजली के बिल को भूलकर मुझे इन सबके दुख से दुखी हो जाना चाहिये। मैं दुखी हो जाता हूँ। कहता हूँ - क्या ट्रेजडी है मनुष्य-जीवन की कि मकान कुल 6 कमरों का रहा जाता है! और कैसी निर्दय

यह दुनिया है कि सिर्फ 40 हजार की किताबें खरीदती है ! कैसा बुरा वक्त आ गया है कि मोनो मशीन ही नहीं आ रही है।

वे तीनों प्रसन्न है कि मैं उनके दुखों से आखिर दुखी हो ही गया।

तरह-तरह के संघर्ष में तरह-तरह के दुख है। एक जीवित रहने का संघर्ष है और एक सम्पन्नता का संघर्ष है। एक न्यूनतम जीवन-स्तर न कर पाने का दुख है, एक पर्याप्त सम्पन्नता न होने का दुख है। ऐसे में कोई अपने टुच्चे दुखों को लेकर कैसे बैठे ?

मेरे मन में फिर वही लालसा उठती है कि वे सज्जन प्रापर्टी समेत अपनी टैक्सों की बीमारी मुझे दे दें और मैं उससे मर जाऊँ। मगर वे मुझे यह चांस नहीं देगें। न वे प्रोपर्टी छोड़ेगें, और मुझे अन्ततः किसी ओछी बीमारी से ही मरना होगा।

विकलांग श्रद्धा का दौर :-

अभी-अभी एक आदमी मेरे चरण छूकर गया है। मैं बढी तेजी से श्रद्धेय हो रहा हूँ, जैसे कोई चलतू औरत शादी के बाद बड़ी फुर्ती से पतिव्रता होने लगती है। यह हरकत मेरे साथ पिछले कुछ महिनों से हो रही है कि जब-तब कोई मेरे चरण छू लेता है। पहले ऐसा नहीं होता था। हाँ, एक बार हुआ था, पर वह मामला वहीं रफा-दफा हो गया। कई साल पहले एक साहित्यिक समारोह में मेरी ही उम्र के एक सज्जन ने सबके सामने मेरे चरण छू लिये। वैसे चरण छूना अश्लील कृत्य

की तरह अकेले में ही किया जाता है। पर वह सज्जन सार्वजनिक रुप से कर बैठे, तो मैंने आसपास खड़े लोगों की तरफ गर्व से देखा – तिलचट्टो, देखो मैं श्रद्धेय हो गया। तुम घिसते रहो कलम।'' पर तभी उस श्रद्धालु ने मेरा पानी उतार दिया। उसने कहा, ''अपना तो नियम है कि गौ, ब्राम्हण, कन्या के चरण जरुर छूते है।'' यानी उसने मुझे बड़ा लेखक नहीं माना था। ब्राम्हण माना था।

श्रद्धेय बनने की मेरी इच्छा तभी मर गयी थी। फिर मैनें श्रद्धेयों की दुर्गति भी देखी। मेरा एक साथी पी–एच. डी. के लिये रिसर्च कर रहा था। डॉक्टरेट अध्ययन और ज्ञान से नहीं, आचार्य–कृपा से मिलती है। आचार्यो की कृपा से इतने 'डाक्टर' हो गये है कि बच्चे खेल–खेल में पत्थर फेंकते है तो किसी डॉक्टर को लगता है। एक बार चौराहे पर यहाँ पथराव हो गया। पाँच घायल अस्पताल में भर्ती हुये और वे पाँचों हिन्दी के 'डॉक्टर' थे। नर्स अपने अस्पताल के डॉक्टर को पुकारती 'डॉक्टर साहब' तो बोल पड़ते थे ये हिन्दी के डॉक्टर।

मैनें खुद कुछ लोगों के चरण छूने बहाने उनकी टाँग खीचीं है। लँगोटी धोने के बहाने लंगोटी चुरायी है। श्रद्धेय बनने की भयावहता मैं समझ गया था। वरना मैं समर्थ हूँ। अपने आपको कभी का श्रद्धेय बना लेता। मेरे ही शहर में कॉलेज के एक अध्यापक थे। उन्होनें अपने नेमप्लेट पर खुद ही 'आचार्य' लिखवा लिया था। मैं तभी समझ गया था कि इस फूहड़पन में महानता के लक्षण है। आचार्य बम्बई–वासी हुये और वहाँ उन्होंने अपने को 'भगवान रजनीश' बना

डाला। आजकल वह फूहड़ से शुरु करके मान्यता-प्राप्त भगवान है। मैं भी अगर नेम-प्लेट में नाम के आगे 'पण्डित' लिखवा लेता तो कभी का 'पण्डित जी' कहलाने लगता।

सोचता हूँ, लोग मेरे चरण अब क्यों छूने लगे है ? यह श्रद्धा एकाएक कैसे पैदा हो गयी है ? पिछले महिनों में मैंने ऐसा क्या कर डाला ? कोई खास लिखा नही है। कोई साधना नहीं की। समाज का कोई कल्याण भी नहीं किया। दाड़ी नहीं बढायी। भगवा भी नहीं पहना। बुजुर्गी भी कोई नहीं आयी। लोग कहते है, ये वयोवृद्ध है। और चरण छू लेते है। वे अगर कमीने हुये तो उनके कमीनेपन की उम्र भी 60-70 साल की हुई। लोग वयोवृद्ध कमीनेपन के भी चरण छू लेते है। मेरा कमीनापन अभी श्रद्धा के लायक नहीं हुआ है। इस एक साल में मेरी एक ही तपस्या है - टांग तोड़कर अस्पताल में पड़ा रहा हूँ। हड्डी जुड़ने के बाद भी दर्द के कारणा टांग फुर्ती से समेट नहीं सकता। लोग मेरी इस मजबूरी का नाजायक फायदा उठाकर झट मेरे चरण छू लेते है। फिर आराम के लिये मैं तख्त पर लेटा ही ज्यादा मिलता हूँ। तख्त ऐसा पवित्र आसन है कि उस पर लेटे दुरात्मा के भी चरण छूने की प्रेरणा होती है।

क्या मेरी टूटी टांग में से दर्द की तरह श्रद्धा पैदा हो गयी है ? तो यह विकलांग श्रद्धा है। जानता हूँ, देश में जो मौसम चल रहा है, उसमें श्रद्धा की टांग

टूट चुकी है। तभी मुझे भी यह विकलांग श्रद्धा दी जा रही है। लोग सोचते होगें – इसकी टांग टूट गयी है। यह असमर्थ हो गया। दयनीय है। आओ, इसे हम श्रद्धा दे दें।

हाँ, बीमारी में से श्रद्धा कभी–कभी निकलती है। साहित्य और समाज के एक सेवक से मिलने मैं एक मित्र के साथ गया था। जब वह उठे तब उस मित्र ने उनके चरण छू लिये। बाहर आकर मैंने मित्र से कहा – 'यार, तुम उनके चरण क्यों छूने लगे ?' मित्र ने कहा –'तुम्हें पता नहीं है, उन्हें डायवेटीज हो गया है।' अब डायवेटीज श्रद्धा पैदा करे, तो टूटी टॉग भी कर सकती है। इसमें कुछ अटपट नहीं है। लोग बीमारी से कौन से फायदे नहीं उठाते है। मेरे एक मित्र बीमार पड़े थे। जैसे ही कोई स्त्री उन्हें देखने आती, वह सिर पकड़कर कराहने लगते। स्त्री पूछती, ''क्या सिर में दर्द है'' वे कहते, ''हाँ, सिर फटा पड़ता है।'' स्त्री सहज ही उनका सिर दबा देती। उनकी पत्नी ने ताड़ लिया। कहने लगी, ''क्योंजी, जब कोई स्त्री तुम्हें देखने आती है तभी तुम्हारा सिर क्यों दुखने लगता है ?'' उसने जबाव भी माकूल दिया। कहा, ''तुम्हारे प्रति मेरी इतनी निष्ठा है कि पर स्त्री को देखकर मेरा सिर दुखने लगता है। ''जान प्रीत–रस इतनेहु माही।''

श्रद्धा ग्रहण करने की भी एक विधि होती है। मुझसे सहज ढंग से अभी श्रद्धा ग्रहण नहीं होती। अटपटा जाता हूँ। अभी 'पार्ट टाईम' श्रद्धेय ही हूँ। कल दो आदमी आये। वे बात करके जब उठे तब एक ने मेरे चरण छूने को हाथ बढ़ाया। हम दोनों ही नौसिखुए। उसे चरण छूने का अभ्यास नही था, मुझे छुआने

का। जैसा भी बना उसने चरण छू लिये। पर दूसरा आदमी दुविधा में था। वह तय नहीं कर पा रहा था कि मेरे चरण छुए या नहीं। मैं भिखारी की तरह उसे देख रहा था। वह थोड़ा-सा झुका। मेरी आशा उठी। पर वह फिर सीधा हो गया। मैं बुझ गया। उसने फिर जी कड़ा करके कोशिश की। थोड़ा झुका। मेरे पाँव में फड़कन उठी। फिर वह असफल रहा। वह नमस्ते करके ही चला गया। उसने अपने साथी से कहा होगा - तुम भी यार, कैसे टुच्चों के चरण छूते हो। मेरे श्रद्धालु ने जबाव दिया होगा - काम निकालने को उल्लुओं से ऐसा ही किया जाता हैं। इधर मुझे दिन-भर ग्लानि रही। मैं हीनता से पीड़ित रहा। उसने मुझे श्रद्धा के लायक नहीं समझा। ग्लानि शाम को मिटी जब एक कवि ने मेरे चरण छुए। उस समय मेरे एक मित्र बैठे थे। चरण छूने के बाद उसने मित्र से कहा, ''मैनें साहित्य में जो कुछ सीखा है, परसाई जी से।'' मुझे मालूम है, वह कवि सम्मेलनों में हूट होता है। मेरी सीख का क्या यही नतीजा है ? मुझे शर्म से अपने आपको जूता मार लेना था। पर मैं खुश था। उसने मेरे चरण छू लिये थे।

अभी कच्चा हूँ। पीछे पड़नेवाले तो पतिव्रता को भी छिनाल बना देते है। मेरे ये श्रद्धालु मुझे पक्का श्रद्धेय बनाने पर तुले है। पक्के सिद्ध-श्रद्धेय मैंने देखे है। सिद्ध मकरध्वज होते हैं। उनकी बनावट ही अलग होती है। चेहरा, आँखे खीचने-वाली। पाँव ऐसे कि बरबस आदमी झुक जाये। पूरे व्यक्तित्व पर 'श्रद्धेय' लिखा होता है। मुझे ये बड़े बौड़म लगते है। पर ये पक्के श्रद्धेय होते है। ऐसे एक के पास मैं अपने मित्र के साथ गया था। मित्र ने उनके चरण छुये जो

उन्होंने विकट ठण्ड में भी श्रद्धालुओं की सुविधा के लिये चादर से बाहर निकाल रखे थे। मैंने उनके चरण नहीं छुये। नमस्ते करके बैठ गया। अब एक चमत्कार हुआ। होना यह था कि उन्हें हीनता का बोध होता कि उन्हें श्रद्धा के योग्य नहीं समझा था। हुआ उलटा। उन्होनें मुझे देखा। और हीनता का बोध मुझे होने लगा – हाय, मैं इतना अधम हूँ कि अपने को इनके पवित्र चरणों को छूने के लायक नहीं समझता। सोचता हूँ, ऐसा बाध्य करने वाला रोब मुझ ओछे श्रद्धेय में कब आयेगा।

श्रद्धेय बन जाने की इस हल्की–सी इच्छा के साथ ही मेरा डर बरकरार है। श्रद्धेय बनने का मतलब है 'नाम परसन्' – ''अव्यक्ति' हो जाना। श्रद्धेय वह होता है जो चीजों को हो जाने दो। किसी चीज का विरोध न करें। जबकि व्यक्ति की, चरित्र की, पहचान ही यह है कि वह किन चीजों का विरोध करता है। मुझे लगता है, लोग मुझसे कह रहे है – तुम अब कोने में बैठो। तुम दयनीय हो। तुम्हारे लिये सब कुछ हो जाया करेगा। तुम कारण नहीं बनोगे। मक्खी भी हम उडायेगें।

और फिर श्रद्धा का यह कोई दौर है देश में ? जैसा वातावरण है, उसमें किसी को भी श्रद्धा में संकोच होगा। श्रद्धा पुराने अखबार की तरह रद्दी में बिक रही है। विश्वास की फसल को तुषार मार गया। इतिहास में शायद कभी किसी जाति को इस तरह श्रद्धा और विश्वास से हीन नहीं किया गया होगा। जिस नेतृत्व पर श्रद्धा थी, उसे नंगा किया जा रहा हैं। जो नया नेतृत्व आया है, वह उतावली में अपने कपड़े खुद उतार रहा है। कुछ नेता तो अण्डरवियर में ही है। कानून से

विश्वास गया। अदालत से विश्वास छीन लिया गया। बुद्धिजीवियों की नस्ल पर ही शंका की जा रही है। डाक्टरों को बीमारी पैदा करने वाला सिद्ध किया जा रहा है। कहीं कोई श्रद्धा नहीं, विश्वास नहीं।

अपने श्रद्धालुओं से कहना चाहता हूँ – ''यह चरण छूने का मौसम नहीं, लात मारने का मौसम है। मारो एक लात और क्रान्तिकारी बन जाओ।''

रानी नागफनी की कहानी :-

सन् 1962 में प्रकाशित यह उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर व्यंग्य उपन्यासों की श्रृंखला में एक उल्लेखनीय कडी है। इस उपन्यास में समाज, शिक्षा और राजनीति के क्षेत्र में व्याप्त पाखण्ड व छल को उजागर किया गया है। परसाई ने स्वयं कहा है, ''यह एक व्यंग्य कथा है। फँटेसी के माध्यम से मैंने आज की वास्तविकता के कुछ पहलुओं की आलोचना की है।'' इसमें परसाई जी ने जीवन में गहराई से व्याप्त विसंगतियों का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। सामन्ती कथा के माध्यम से समकालीन परिदृश्य को अंकित किया है। यह मिटती जा रही सामंती परम्परा और दिग्भ्रमित नयी पीढ़ी का दर्पण है। ''व्यंग्य की अद्भुत समझ और रचनाशीलता की मजबूत पकड़ के सहारे हरिशंकर परसाई ने इस व्यंग्य उपन्यास में कथा के प्राचीन आश्रय और वर्णन के घिसे हुये शिल्प का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है।'' इसमें सन्देह नहीं कि परसाई की व्यंग्य क्षमता ने 'रानी नागफनी की कहानी' को सामाजिक कुव्यवस्था और व्यापक विसंगतियों का संदर्भ ग्रंथ बना दिया है। उपन्यास का हर पात्र समाज के किसी–न–किसी विकृत अंक का प्रतीक

है। ये व्यक्ति नहीं, बल्कि पूरे के पूरे वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, प्रस्तुत उपन्यास में कथा की अपेक्षा चरित्र अधिक महत्वपूर्ण है।

इसमें मुख्य अमात्य गोबरधनदास और भैया साहब के माध्यम से पूँजीवादी जनतंत्र की असलियत को दिखाया गया है। व्यवस्था का ऐसा कोई कोना नहीं बना जिसपर सांकेतिक ढंक से परसाई ने प्रकाश न डाला हो।

परसाई का 'रानी नागफनी की कहानी' उपन्यास मुंशी इन्साअल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' के कथा–तंत्र पर आधारित है। परसाई ने फैंटेसी के माध्यम से आज के समाज में व्याप्त वास्तविकताओं के कुछ पहलुओं की आलोचना की है।

अस्तभान किसी राजा भयभीत सिंह का लड़का है। वह उन्नीस वर्ष का है किन्तु स्कूल में उसकी उम्र चार वर्ष कम लिखायी थी, इसलिये स्कूल–रजिस्टर के हिसाब से उसकी उम्र चौबीस वर्ष ही है। यहीं से उपन्यास की शुरुआत होती है। और प्रथम अनुच्छेद में शिक्षा के क्षेत्र और वास्तविक जीवन में असामंजस्यता परिलक्षित होती है और पाठक को शिक्षा की दयनीयता पर सोच को विवश करता है। कुँवर अस्तभान का एक मित्र है मुफ्तलाल। दोनों साथ–साथ पढते है, साथ–साथ शरारतें करते हैं; किन्तु अस्तभान राजा का बैटा होने के कारण बच जाता है और मार मुफतलाल को पड़ती है। राजकुमार अस्तभान बार–बार परीक्षा में फेल होता है; किन्तु इसका उसे अफसोस रंचमात्र नहीं है। वह खुश है कि उसने अपने कुल की परम्परा को कायम रखा। वह अपने पिता क

एक पत्र लिखता है – ''पिताजी अपने कुल में विद्या की परम्परा नहीं है। आप बारह–खड़ी से आगे नहीं बढ़े और पितामह स्याही का उपयोग केवल अंगूठा लगाने के लिये करते थे। मैनें विद्या की परम्परा डालने की कोशिश की। पर मैं असफल रहा।'' आगे इसी प्रसंग में अस्तभान के कुंजियों के उपयोग, परीक्षा में गलत उत्तर देने, नकल करने, पास होने के लिये अनाप–शनाप पैसा खर्च करने वर्णन है। इस प्रसंग में फैंटेसी के माध्यम से आज की शिक्षा पद्धति में प्रचलित विकृतियों और विद्रूपताओं को प्रकाशित किया है। जिसके पास पैसा है, वह उसका प्रयोग उचित–अनुचित (साम–दाम–दंड–भेद) सभी तरह की नीतियाँ अपनायी जाती है। इसके बावजूद भी परीक्षा में असफल होकर राजकुमार अस्तभान आत्महत्या की योजना बनाता है। भेड़ाघाट पर आत्महत्या का प्रयत्न करने के दौरान ही उसकी मुलाकात राखड़सिंह की कन्या राजकुमारी नागफनी से होती है। दोनों में प्रेम हो जाता है और आत्महत्या का विचार त्याग कर दोनों एक–दूसरे से विवाह कर लेते है।

हरिशंकर परसाई जी ने रानी नागफनी की कहानी के माध्यम से हमारा वर्तमान युग की शिक्षा पद्धति की कमियों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। इस कहानी में उन्होंने धनाढय लोगों द्वारा शिक्षा किस प्रकार से पैसे या लालच देकर खरीदने का प्रयास किया जाता है यह बात इंगित की है।

सदाचार का ताबीज :-

इस कहानी में एक कालपनिक राज्य के माध्यम से आज के समय-संदर्भ को चित्रित किया गया है। कहानी इस तरह है -

एक राज्य में भ्रष्टाचार बहुत फल गया था। राजा चिंतित होता है और अपने सलाहकारों व मंत्रियों को बुलाता है। मंत्रीगण विशेषज्ञों को बुलाने की सलाह देते है। विशेषज्ञों के यह सिद्ध कर देने पर कि सारे राज्य और राजमहल में भी भ्रष्टाचार अपने पंजे जमा चुका है। राजा की नींद हराम हो जाती हैं। उसके सेवक एक दिन साधु को पेश करते है जो सदाचार का ताबीज बाँटता है। ताबीज के जोर पर कर्मचारी दो तारीख को रिश्वत नहीं लेते किन्तु इकतीस तारीख को ले लेते है।

आर्थिक परेशानियों के कारण अल्पवेतन भोगी समुदाय भी रिश्वत लेता है। बिना आर्थिक सुरक्षा प्रदान किये रिश्वत या भ्रष्टाचार को खत्म नहीं किया जा सकता है। महीने के शुरु में जो व्यक्ति ताबीज बाँध लेने के कारण सदाचारी बन जाता है वही व्यक्ति महीने की आखिरी तारीख को ताबीज बाँधे रखने के बावजूद रिश्वत ले लेता है। इसमें तावीज का प्रभाव नहीं, महीने के शुरु में मिलने वाली तनख्वाह का प्रभाव ज्यादा है। आर्थिक तंगी उसे सदाचारी बनने ही नहीं देती। यहाँ समूची व्यवस्था में बदलाव जरुरी है। परसाई स्वयं कहते है, ''संकेत में मैं यह कहना चाहता हूँ कि बिना व्यवस्था में परिवर्तन किये, भ्रष्टाचार के टाँके बिना खत्म किये और कर्मचारियों को बिना आर्थिक सुरक्षा दिये भाषणों, सर्कुलरों,

उपदेशों, सदाचारी नहीं होगा।'' जिस व्यक्ति की आवश्यक आवश्यकताएँ ही पूरी नहीं होतीं, वह किस आधार पर सदाचारी बना रह सकता है।

प्रस्तुत कहानी में राजा (शासक) ऐसा है जो यह नहीं जानता कि भ्रष्टाचार होता क्या है। वह अपने मंत्रियों से कहता है, ''फिर भी तुम लोग सारे राज्य को ढूँढकर देखो कि कहीं भ्रष्टाचार तो नहीं है। अगर कहीं मिल जाये तो हमारे देखने के लिये नमूना लेते आना। हम भी दो देखें कि कैसा होता है।'' इस पर एक दरबारी उत्तर देता है – 'हजूर, वह हमें नहीं दिखेगा। सुना है कि बहुत बारीक होता है। हमारी आँखें आपकी विराटता देखने की इतनी आदी हो गयी है कि बारीक चीज नहीं दिखतीं। हमें भ्रष्टाचार दिखा भी तो उसमें हमें आपकी ही छवि दिखेगी, क्योंकि हमारी आँखों में आपकी ही सूरत बसी है।' इससे यह नतीजा निकलता है कि भ्रष्टाचार, रिश्वत ऊपर से नीचे तक, सभी जगह है। जब सम्पन्न समर्थ व्यक्ति ही रिश्वत लेने से पीछे नहीं हटते तो साधारण क्लर्क किस बूते पर स्वयं को सदाचारी रख पायेगा ? यह उसकी मजबूरी है। जब तक उनकी दैनिक जरुरतें पूरी करने योग्य धन नहीं मिलता, वे इसी तरह से लेते रहेगें। पहले उन्हें आर्थिक सुरक्षा दी जाये, फिर भाषण, उपदेश और निगरानी आयोग।

परसाई जी ने भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिये भाषण उपदेश व आयोग की स्थापना पर बल देने की बजाय कर्मचारियों एवं अधिकारियों की

आवश्यक आवश्यकतायें पूरी करने पर बल दिया है। उनका मानना है कि मानवीय गुण पूरी तरह परिपूर्ण होने का होता है, वह यदि तृप्त नहीं होता है तो सामाजिक व्यवस्था अस्थिर ही रहेगी।

जैसे उनके दिन फिरे :-

प्रस्तुत कहानी में राजनेताओं की स्वार्थ-लोलुपता, चरित्रहीनता और अनैतिकता पर तीखा व्यंग्य है। ये दुस्साहसी, चरित्रभ्रष्ट शासक बेधड़क जनता का शोषण करते हैं। लोककथा शैली में यह एक राजनैतिक कहानी है।

कहानी इस तरह है – एक था राजा। राजा के चार लड़के थे। रानियाँ ? रानियाँ तो अनेक थीं, महल में एक 'पिंजरापोल' ही खुला था। राजा उत्तराधिकार सौंपने के लिये चारों लड़कों को परखना चाहता है। इसके लिये उन्हें एक वर्ष का समय दिया जाता है। इस निश्चित अवधि में विशेष योग्यता से जो अधिक धन कमा लेगा, वही उत्तराधिकार का पात्र होगा। पहला राजकुमार मेहनत मजदूरी करके सौ स्वर्ण मुद्राऐं एकत्रित कर पाता है। वह कहता है – पीठ पर मैंने एक वर्ष बोरे ढोये है, परिश्रम किया है, ईमानदारी से धन धमाया है, मजदूरी में से बचाई हुई ये सौ मुद्राऐं ही मेरे पास है। मेरा विश्वास है कि ईमानदारी और परिश्रम ही राजा के लिये सबसे आवश्यक है। दूसरा क्षत्रियत्व का गौरव बताकर डाकेजनी में एक लाख स्वर्ण मुद्राऐं एकत्रित करता है। यह राजकुमार राजा के लिये योग्य गुण साहसी और लुटेरा होना मानता है। तीसरा पुत्र व्यापार करने लगा। मिलावट

और नकली सामान बेचकर वह दस लाख स्वर्ण मुद्राऐं कमाता है। वह घी में मूँगफली का तेल और शक्कर में रेत मिलाता था। उसके मत से राजा को बेईमान और धूर्त होना चाहिये, तभी उसका राज्य टिक सकता है। चौंथा सबसे छोटा राजकुमार एक सेवा आश्रम में पहुँचता है। जहाँ त्याग और सेवा को धर्म बताकर धन्धे करने वालों से उसका परिचय होता है। वहीं वह भी इस कार्य में निपुण होता है। सादे कपड़े पहनकर लोगों को धोखा देकर चंदा लेता है और राजसी ठाट से रहता है। उसने कुल बीस लाख स्वर्ण मुद्राऐं कमायीं। तब राजा, मंत्री, विदूषक और चाटुकर, सभी ने एकमत होकर सबसे छोटे राजकुमार को उत्तराधिकारी बनाने की सलाह दी। कहानी के पात्र सिर्फ कहानी की रचना में सहायक हैं। मुख्य और महत्वपूर्ण चीज वह है जो परसाई कथा के माध्यम से कहना चाहते है। वह है शोषण करने वाली व्यवस्था और विलासी व्यवस्थाओं की मानसिकता। ये पिंजरापोल सामन्ती और पूँजीपति विलासिता का सूचक है। आज मेहनत और ईमानदारी की कोई कीमत नहीं, सफल वे ही हो सकते है जो डाकू है या व्यापारी। इनसें भी अधिक सफल वे है जो सादे वेश में रहते है, किन्तु लाखों में खेलते है। चन्दे के नाम पर त्याग और सेवा को धंधा बनाकर, लोगों की आँखों में धूल झोंकते है। जिस तरह छोटा राजकुमार राजा की योग्यता बताता है, वह आज भी संदर्भित नहीं है – ''राजा को प्रजा से धन वसूल करने की विद्या आनी चाहिये। प्रजा से प्रसन्नतापूर्वक धन खींच लेना, राजा का आवश्यक गुण है। उसे बिना नश्तर

लगाये खून निकालना आना चाहिये।'' सेवा आश्रमों के संचालक परसाई की सजग दृष्टि से बच नहीं सके। उनकी जो दुर्गत बनायी है वह भी देखने योग्य है – ''पिताजी, मैं सेवा आश्रम में शिक्षा प्राप्त करने लगा। मैं वहाँ राजसी ठाट से रहता; सुन्दर वस्त्र पहनता, सुस्वादु भोजन करता, सुन्दरियाँ पंखा झलती, सेवक हाथ जोड़ साथ खड़े रहते।'' परिश्रमी और ईमानदार लोगों की खरे पसीने की कमाई इस तरह से समाज सेवक पानी में वहाते है।

वास्तव में दिन फिरने की यह लीला जो प्रस्तुत की गयी, वह हमारा यथार्थ। यह कहानी संकेतात्मक है और स्वतंत्रता के वाद सत्ता प्राप्त करने होड़ में विजयी तथाकथित शासक वर्ग पर चोट करती है। इनसे डाकू और जमाखोर व्यापारी भी पीछे रह गये। जो सबसे बड़े लुटेरे है, वे ही सबसे अधिक प्रतिष्ठित और योग्य है। यही उत्तराधिकार की क्षमता का नया फार्मूला है।

इस कहानी में परसाई की गहरी सामाजिक संवेदना अन्तर्निहित है। वे सर्वहारा वर्ग के प्रति पूर्ण सहानुभूति रखते है और बड़ी गंभीरता व जिम्मेदारी के साथ शोषकों के प्रति शोषित सर्वहारा वर्ग को सचेत करते चलते है।

सुदामा के चावल :–

परसाई पौराणिक प्रसंगों को समकालीन यथार्थ पर व्यंग्य करने के लिये बडी सफलता से प्रयोग में लाते है। 'सुदामा के चावल' ऐसी रचना है जिसमें उन्होनें पुराण रूप का बिल्कुल नये संदर्भो में प्रयोग किया है।

सुदामा अपने मित्र, शासक कृष्ण से मिलने जाता है। पहरेदार पहले तो उसकी दीन–हीन दशा देखाकर उसका मजाक उड़ाते है, बाद में भेंट में देने के लिये लाये गये उसके चावल धूल के रूप में लेते है, तब कहीं कृष्ण से मिलने देते है। कृष्ण सुदामा से इस बात को गुप्त रखने की सलाह देते है।

यह कहानी वर्तमान कार्यालयों और व्यवस्था के विद्रूप स्वरुप को प्रस्तुत करती है। रिश्वत (खुरचन) की प्रवृति भारतीय कार्यालयों में बड़े से लेकर छोटे–से–छोटे कर्मचारी तक में पायी जाती है। ''सुदामा के चावल'' में सुदामा को जो श्री–समृद्धि मिलती है, वह पुरातन मैत्री के कारण नहीं, राज के उच्च पदस्थ से निम्नतम कर्मचारियों की घूसखोरी का रहस्य जान लेने के बाद मुँह बंद करने के लिये दिया जाता है।'' यह प्रवृति इस हद तक त्रासद हो गयी है कि मनुष्य–मनुष्य में भाईचारा खत्म हो चुका है। सुदामा जब एक कर्मचारी से कहता है – ''भाई, मुझे महाराज से मिलना है; तब वह पूछता है – तुम भाई क्यों कहते हो ? मैंने उत्तर दिया – मनुष्य–मनुष्य को भाई ही तो कहेगा। उसने मुझे समझाया – बहुत भोले हो। आगे किसी राज–कर्मचारी को भाई मत कहना। वह मनुष्य होने में अपनी अप्रतिष्ठा समझता है। उसे देवता कहना चाहिये।'' राज–कर्मचारी को देवता इसलिये कहा है कि उसकी इच्छा के बगैर कोई काम संभव नहीं हो सकता। शासक वर्ग सत्ता पाकर ऐशो–आराम में डूबा रहता है। बिना 'कुछ लिए' वह कोई काम करने को तैयार नहीं। इस तरह संपूर्ण व्यवस्था इसी तरह की बुराईयों में पड़ी

रहती है। इनके रहस्य को जान लेने वाले व्यक्ति को जब रहने के लिये मजबूर किया जाता है। वे इसके बावजूद परोपकार और ईमानदार कहलाना ही पसंद करते है। उसके विरुद्ध कुछ कहने का मतलब मौत होता है। परसाई ने इसे इस तरह कहा है – सुदामा से एक कर्मचारी कहता है – ''देख बे ब्राम्हण के बच्चे, यदि तूने महाराज को यह चावल वाला मामला बताया तो तेरी ब्राम्हणी विधवा हो जायेगी।''

घूस लेने को 'खुरचन' कहा जाता है। सामान्य व्यक्ति इस शब्द का अर्थ नहीं जानता। यह शासन का विशेष शब्द है – ''अच्छे शासन कुछ शब्दों और आँकड़ों के बल पर चलते है।'' राजधानी की भी अपनी अलग ही छवि है, सब व्यवस्थापकों की नजरों में आना चाहते है – ''विशेष सुविधा प्राप्त करने के लिये सारा धन सिमटकर द्वारिका में आ गया था। सारी विद्या इकट्ठी हो गयी थी। बड़े-बड़े कलावंत, पंडित, कवि और गायक राजधानी में आकर बस गये थे क्योंकि यहाँ राजपुरस्कार खूब बँटते थे।'' यह पूँजीवादी नैतिकता का मापदंड है। इनके आदर्श भिन्न है। अपने लिये सुविधा और मौके का फायदा उठाना इनके चरम मूल्य है।

शासक वर्ग की पूर्ण सुख-सुविधा में रहते हुए भी अपने ही जाल में फँसकर दयनीय हालत में पहुँच चुका है। कृष्ण कहते है – ''मेरी स्थिति को तुम क्या समझो। मैं यही नहीं समझ पाता कि कौन मेरा है और कौन पराया।'' अनेक रिश्तेदार बनकर आ जाते है राजपद के आकर्षण से। बड़ा आदमी बनते ही लोगों को उससे अपनी रिश्तेदारी याद आने लगती है।

प्रस्तुत कहानी में सुदामा आम-जनता का प्रतिनिधि है और कृष्ण व उसके कर्मचारी वर्तमान लोकतंत्रीय व्यवस्था के प्रतीक है। शासक जो राजधानी में रहता है, साधारण आदमी उसे देख भी नहीं सकता। उसके पास तो शासक के आदमी कर (वोट) लेने आते है; इसी से पता चलता है कि सरकार है। उसके पास उससे मिलने के लिये कुछ (भेंट) लेकर जाना होता है जिसे उसके कर्मचारी बीच में ही चट कर जाते है और ऊपर से धौंस बताते है। यहाँ परसाई ने प्राचीन मिथकों के माध्यम से वर्तमान सामाजिक, राजनैतिक व्यवस्था को अपनी पूरी असलियत के साथ प्रस्तुत किया है।

परसाई जी ने वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था पर करारा प्रहार किया है। वे कहते हैं कि व्यवस्था को बदलने के लिये हमें भी बदलना होगा। यदि हमें इस गहरी जड़ों को हटाना है तो सर्वस्व ही हटाना होगा। वर्तमान व्यवस्था की ''सुदामा के चावल'' नामक कहानी से सम्बन्धित है।

<u>शिकायत मुझे भी है</u> :-

स्वतंत्र भारत की बुर्जुआ नौकरशाही और इस क्षेत्र में व्याप्त धाँधली व निकम्मेपन को परसाई ने इस निबंध में दिखाया है। ''मेरी शिकायत यह नहीं है कि अपनी प्रतिभाओं की कद्र यहाँ क्यों नहीं होती। मेरी शिकायत है कि 'इंडियन पेनल कोड' यानी भारतीय दंड संहिता को साहित्य का नोबल पुरस्कार क्यों नहीं मिला अभी तक ?'' इस उदाहरण में हमारी अंधी कानून व्यवस्था की विकृति को

उद्‌घाटित किया है। बिना कुछ सोचे-विचारे हमारी कानून व्यवस्था का हर निर्णय इसी के मुताबिक होता है। परसाई जी कहते भारतीय दंड संहिता अपना महान महाकाव्य है। वह काव्य है और धर्मग्रन्थ भी। हमारी सारी प्रतिभा कानून और व्यवस्था के ठेकेदारों की अगाध श्रद्धा देखकर ही शायद परसाई जी के मन में यह शंका उपजी हो कि इसे साहित्य का नोबेल पुरस्कार क्यों नहीं मिला ? इसी आधार पर उन्होंने जब-तब रचे जाने वाले अध्यादेशों को ललित गीत कहा है। इन ललित गीतों के संग्रह को नव-गीतांजलि के नाम से प्रकाशित कर दें तो कोई विदेशी मनीषी इसे 'गीतांजलि' के धोखे में पुरस्कृत कर देगा। आखिर रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा को भी तो विदेशियों नें ही पहचाना था, हमारी तो सारी प्रतिभा 'कानून और व्यवस्था' में खर्च हो गयी, अब प्रतिभा को पहचानने की प्रतिभा कहाँ से लायें ? हमारे यहाँ तो उसी को प्रतिभावान समझा जाता है जो (दूसरों के लिये) अध्यादेश लिख सकें। उनके स्वयं के लिये कोई बंधन नहीं, कोई कानून नहीं। 'नव गीतांजलि' को देखकर विदेशी सोचेंगे कि रवीन्द्रनाथ अपनी प्रतिभा के शिखर काल में अध्यादेश लिखा करते थे। सच्चे कवि की पहचान यही है कि वह अध्यादेश लिख सकता है या नहीं।

सामाजिक व्यवस्था की संरचना की असंगति से परसाई जी भली-भाँति परिचित है और यही कारण है कि उनकी विरोधात्मक वाक्य संरचना हमें चिंतन करने पर मजबूर कर देती है कि नहीं - हमें अपनी राजनैतिक-सामाजिक

व्यवस्था बदलनी ही पड़ेगी। इस सार्वभौमिक असंगति को दूर करने का उपाय ऊपरी सुधार नहीं, क्रांति ही है। सामाजिक व कानून व्यवस्था की असंगति का एक और उदाहरण–जिसने सबसे पहले पुलिस की लाठी के दोनों सिरों पर लोहे के गुट्टे लगाये, उसे भौतिकशास्त्र का नोबेल पुरस्कार क्यों नहीं मिला ? शांति और व्यवस्था कायम रखने का यह भी तो एक तरीका है। और भी कई तरीके है, अब यह हमारी मानसिकता और क्षमता पर निर्भर करता है कि हम कौन सा तरीका अपनायें ? एक और तरीका परसाई जी बताते है जो हमारे यहाँ 'लोकप्रिय' है। 'उस दिन अखबारों में पढ़ा था, कि देश अश्रुगैस में आत्मनिर्भर हो गया, तो समझ गया 'रिनासां' हो गया।'' सामाजिक व्यवस्था की असंगति व भयानक विद्रूपता को बेनकाब किया है, ''यों तो पिछले बीस सालों से इस देश में हर चीज अश्रुगैस में बदलती जा रही है। यह अजब रासायनिक क्रिया चल रही है। दुनिया के वैज्ञानिक शोध करें कि देश में शक्कर और गेहूँ अश्रुगैस में कैसे बदल जाते है।'' देश के चंद पूँजीवादी चावल, गेहूँ, शक्कर दबा कर रख देते है। और जब जन-साधारण इसका विरोध करते है तो उन्हें अश्रुगैस की सहायता से दबाया जाता है। पुलिस की लाठी से डराया जाता है। यह चिन्ता का विषय है कि हमारे देश में खाद्यान्न की कमी नहीं है, फिर क्यों आम-आदमी भूख से मजबूर होकर दंगे करता है और उसे अश्रुगैस और लाठीचार्ज से दबाया जाता है ? (घटिया) अनाज विदेशों से मंगाने में शर्म नहीं आती किन्तु 'विदेशी गैस से आँसू आते थे तो राष्ट्र को शर्म आती थी', इसलिये देश को अश्रुगैस में आत्मनिर्भर बना लिया गया। कई दूसरे

देश भी है जो हमारी समाज–व्यवस्था को इससे बेहतर नहीं देना चाहते थे और अश्रुगैस बनाकर हमारे देश को सप्लाई करते थे। उनकी अश्रुगैस से शायद दूसरों के ही आँसू निकलते थे। अब कोई सहानुभूतिपूर्ण तरीका न अपनाकर वही अश्रुगैस वाला फार्मूला हमने भी अपना लिया और सारे देश को अश्रुगैस का कारखाना बना डाला। यहाँ परसाई जी ने सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था में होने वाली असंगतियों के प्रति सचेत किया है। अव्यवस्था से विद्रोह पैदा होता है तो उसे कानून से दबाने का प्रयास किया जाता है। लाठी–चार्ज करके सिर फोड़कर पुलिस को सुख मिलता है।

परसाईजी के अन्य अनेक निबंधो की तरह यह निबंध भी आत्मकथात्मक ही है। कहने का ढंग जरुर सरल, सामान्य है। ''प्रतिभा–पलायन यानी भारतीय प्रतिभाओं के इंग्लेंड, अमेरिका, कनाडा आदि देशों में जा बसने की समस्या पर आर्थिक–राजनीतिक क्षेत्रों में विचार करते रहे है। देश से पलायन करने वाली प्रतिभाओं की निन्दा देश भक्तिपूर्ण भावना की दृष्टि में बहुत लोग करते रहे है। लेकिन परसाई जी इस समस्या को उस भावना से हटकर देखते है।'' डॉ. खुराना के मामले को लेकर ये शिकायतें कुछ लोग सोच रहे है। मगर मुझे शिकायत नहीं। विदेशों से हम गेहूँ, चावल मंगाकर खाते है, मगर उनके दाम चुकाने की हैसियत है नहीं। उसके चुकाने में अगर प्रतिभाऐं दे देते है तो क्या बुरा है ? तुमने गेहूँ दिया था; लो, चार वैज्ञानिक ले जाओ। इस तरह का निबंध देश की वर्तमान नौकरशाही के विरुद्ध शिकायत है।

कंधे श्रवण कुमार के :-

इसमें परसाई ने परम्परा और वर्तमान का व्यावहारिक स्वरुप प्रस्तुत किया है। इस निबंध में वे नयी और पुरानी पीढ़ी के विश्वासों और शंकाओं की पडताल करते है। भारतीय परम्परा में पिता-स्वरुप लोग सवालों और शंकाओं से परे होते थे। वे अपने पुत्र-स्वरुप लोगों (नयी पीढ़ी) पर विधि और निषेध लगाते थे। गुरु अँगूठा कटवा लेते थे, फिर भी धन्य कहलाते थे। अँगूठा देकर भी शिष्य गुरु को प्रणाम करता था। किन्तु आज का एकलव्य सचेत हो गया है। वह न अपना अँगूठा कटने देगा, न अपने किसी साथी का। ''यदि उपकुलपति ध्यान नहीं देते तो वह विद्यार्थियों का जुलूस लेकर विश्वविद्यालय पर धावा बोल देता है।'' परसाई जी कहते है पुरानी नयी पीढी में यही अंतर है कि पुरानी पीढ़ी अपने पूर्वजों के विश्वास पर चिरने को तैयार रहती थी, नयी पीढ़ी के मन में शंकाऐं और प्रश्न उठने लगे है। वे कहने लगे है, आपके विश्वास आपके अपने है, आप उनके लिये हमें क्यों कटवाते है, अपने को कटवाईये। वे भीष्म को धन्य कहते थे, ये शान्तनु को धिक्कार कहते है।

हम सव गलत किताबों की पैदावार है। ये सवालों को मारने की किताबें थी। शुरु से ही ट्रेनिंग दी जाती है कि पिता और गुरु की आज्ञा आँखें बंद करके स्वीकार करों। अव वातावरण बदल रहा है। किताबें बदल गयीं है, सवाल और शंकाऐं पैदा हो रहे है। पुरानी पीढी अपनी आँखों से सिर्फ कांटे बचाती हुई, पुरानी

पीढी के दिखाये रास्ते पर चल रही है। श्रवणकुमारों के लिये परसाई लिखाते है, ''कितनी काँवड़ें है – राजनीति में, साहित्य में, कला में, धर्म में, शिक्षा में, अन्धे बैठे है और आँख वाले उन्हें ढो रहे है। अन्धे में अजब काइयाँपन आ जाता हैं। वह खरे और खोटे सिक्कों को पहचान लेता है। पैसे सही गिन लेता हैं उसमें टटोलने की क्षमता आ जाती है। वह पद टटोल लेता है, पुरस्कार टटोल लेता है। सम्मान के रास्ते टटोल लेता है। बैंक का चेक टटोल लेता है। आँख वाले जिन्हें नहीं देख पाते, उन्हें वह टटोल लेता है।'' नयी पीढ़ी में घोर अनुसरण का भाव था तो बुर्जुआ पीढी में अजब स्वार्थता। ''नये अंधो के तीर्थ भी नये है। वे काशी, हरिद्वार, पुरी नहीं जाते है। इस काँवड़ वाले अन्धे से पूछो – कहाँ ले चले ? वह कहेगा – तीर्थ ! कौन सा तीर्थ ? जवाब देगा – केबिनेट ! मंत्रिमंडल ! उस काँवड़वाले से पूछो तो वह भी तीर्थ जाने को प्रस्तुत है। कौनसा तीर्थ चलेगें आप ? जवाब मिलेगा – अकादमी, विश्वविद्यालय।'' इस निबंध में परसाई ने (यहाँ) पौराणिक कथा के मिथ के माध्यम से पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर के वर्ण-चरित्र और पीढ़ियों के संबंधों को उजागर किया हैं यहाँ श्रवणकुमार (नयी पीढ़ी) अन्धे माता-पिता (स्वार्थी, अशक्त पीढ़ी) को काँवड़ में बैठकर ढो रहे है। अपनी आँखों का उपयोग अपनी समझ से नहीं, अंधों के बताये रास्ते पर चलने के लिये कर रहे है। स्वयं रास्ता नहीं ढूँढ़ते।

यथार्थ की गहरी समझ के साथ परसाई ने इस पूँजीवादी व्यवस्था में व्याप्त बुर्जुआ सुविधा-भोगी जड़ मानसिकता और अमानवीय प्रवृति को खोलकर

रखा है। एक ऐसी पीढी जो अपने आसपास देखने के अलावा कुछ नहीं देखती। अपना इहलोक और परलोक सुधारने की धुन में अपनी आने वाली पीडी के भविष्य की भी फिक्र नहीं करती। विचारणीय और घिनौना अंधापन हैं यह। नयी पीढ़ी में थोड़ी-सी सजगता, चेतना और प्रगतिशील विचार आते है तो ये अन्धे विचलित हो जाते है - ''ओ पापी, यह क्या कर रहे हो ? क्या हमें गिरा दोगे ? अंध-संस्कारों से त्रस्त ये लोग और कुछ नहीं देख सकते, किन्तु अपना अंधकारमय भविष्य देखकर जरुर सचेत हो उठते है।'' श्रवणकुमार की कहानी को मुख्य मुद्दा बनाकर परसाई ने इस निबंध में पीढ़ियों के आपसी संबंधों और उनकी वनावट की अच्छी पड़ताल की है।

परसाई जी ने इस रचना के माध्यम से अपनी परम्पराओं के अनुरुप चलते लोगों को भी एक चेतावनी दे डाली है कि माता-पिता की सेवा भी करों उनके व्यवहारों की कद्र करों तथा चेतन रहते हुये पीढ़ी को मत नकारों, साथ ही जड़ मानसिकता को बोझिल मत होने दो। जिससे तुम्हारा विकास ही अवरुद्ध हो जाये।

(ब) परसाई जी की व्यंग्य रचनाऐं :-

ठिठुरता हुआ गणतन्त्र :-

चार बार में गणतन्त्र-दिवस का जलसा दिल्ली में देख चुका हूँ। पाँचवी बार देखने का साहस नहीं। आखिर यह क्या बात है कि हर बार जब मैं गणतन्त्र-

समारोह देखता, तब मौसम बड़ा क्रूर रहता। छब्बीस जनवरी के पहले ऊपर बर्फ पड़ जाती है। शीत-लहर आती है, बादल छा जाते है, बूँदाबाँदी होती है और सूर्य-छिप जाता है। जैसे दिल्ली की अपनी अर्थनीति नहीं है, वैसे ही अपना मौसम भी नहीं है। अर्थनीति जैसे डालर, पौण्ड, रुपया, अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष या भारत-सहायता क्लब से तय होती है, वैसे ही दिल्ली का मौसम कश्मीर, सिक्किम, राजस्थान आदि तय करते है।

इतना बेवकूफ भी नहीं हूँ कि मान लूँ, जिस साल मैं समारोह देखता हूँ, उसी साल ऐसा मौसम रहता है। हर साल देखने वाले बताते है कि हर गणतन्त्र-दिवस पर मौसम ऐसा ही धूपहीन ठिठुरन वाला होता है।

आखिर बात क्या है ? रहस्य क्या है ?

जब कांग्रेस टूटी नहीं थी, तब मैनें एक कांग्रेस मन्त्री से पूछा था कि यह क्या बात है कि हर गणतन्त्र-दिवस को सूर्य छिपा रहता है ? सूर्य की किरणों के तले हम उत्सव क्यों नहीं मना सकते ? उन्होनें कहा - 'जरा धीरज रखिये। हम कोशिश में लगे है कि सूर्य बाहर आ जाये। पर इतने बडे सूर्य को बाहर निकालना आसान नहीं है। वक्त लगेगा। हमें सत्ता के कम-से-कम सौ वर्ष तो दीजिये !'

दिये। सूर्य को बाहर निकालने के लिये सौ वर्ष दिये, मगर हर साल उनका कोई छोटा कोना निकलता तो दिखना चाहिये। सूर्य कोई बच्चा तो है नहीं जो अन्तरिक्ष की कोख में अटका है, जिसे आप एक दिन ऑपरेशन करके निकाल देगें।

इधर जब कांग्रेस के दो हिस्से हो गये तब मैनें एक इण्डिकेटी कांग्रेसी से पूछा। उसने कहा – 'हम हर बार सूर्य को बादलों से बाहर निकालने की कोशिश करते थे, पर हर बार सिण्डिकेटवाले अड़ंगा डाल देते थे। अब हम वादा करते है कि अगले गणतन्त्र–दिवस पर सूर्य को निकालकर बतायेगें।

एक सिण्डिकेटी पास खड़ा सुन रहा था। वह बोल पड़ा – 'यह लेडी (प्रधानमन्त्री) कम्युनिस्टों के चक्कर में आ गयी है। वही उसे उकसा रहे है कि सूर्य को निकालो। उन्हें उम्मीद है, बादलों के पीछे से उनका प्यारा 'लाल सूरज' निकलेगा। हम कहते है कि सूर्य को निकालने की क्या जरूरत है ? क्या बादलों को हटाने से काम नहीं चल सकता है ?'

मैं संगोपाई भाई से पूछता हूँ। वह कहता है – 'सूर्य गैर–कांग्रेसवाद पर अमल कर रहा है। उसने डाक्टर लोहिया के कहने से हमारा पार्टी–फार्म भर दिया था। कांग्रेसी प्रधानमन्त्री को सलामी लेते वह कैसे देख सकता है ? किसी गैर–कांग्रेसी को प्रधानमन्त्री बना दो, तो सूर्य क्या, उसके अच्छे भी निकल पड़ेगें।'

जनसंघी भाई से भी मैनें पूछा। उसने साफ कहा – 'सूर्य सेक्युलर होता तो इस सरकार की परेड में निकल आता। इस सरकार से आशा मत करो कि वह भगवान अंशुमाली को निकाल सकेगी। हमारे राज्य में ही सूर्य निकलेगा।'

साम्यवादी ने मुझसे साफ कहा– 'यह सब सी. आई. ए. का षडयन्त्र है।

स्वतंत्र पार्टी के नेता ने कहा – 'रुस का पिछलग्गू बनने का और क्या नतीजा होगा।'

प्रसोपा के भाई ने अनमने ढंग से कहा – 'सवाल पेचीदा है। नेशनल कौंसिल की अगली बैठक में इसका फैसला होगा। तब बताऊँगा।'

राजाजी से मैं मिल न सका। मिलता, तो वह इसके सिवा क्या कहते कि इस राज में तारे निकलते है, यही गनीमत है।

मैं इन्तजार करुँगा, जब भी सूर्य निकले।

स्वतन्त्रता–दिवस भी तो भरी बरसात में होता है। अंग्रेज बहुत चालाक है। भरी बरसात में स्वतन्त्र करके चले गये। उस कपटी प्रेमी की तरह भागे, जो प्रेमिका का छाता भी ले जाये। वह बेचारी भीगती बस–स्टॅण्ड जाती है, तो उसे प्रेमी की नही, छाता–चोर की याद सताती है।

स्वतन्त्रता–दिवस भीगता है और गणतन्त्र–दिवस ठिठुरता है।

मैं ओवरकोट में हाथ डाले परेड देखता हूँ। प्रधानमन्त्री किसी विदेशी मेहमान के साथ खुली गाड़ी में निकलती है। रेडियों टिप्पणीकार कहंता है 'घोर करतल–ध्वनि हो रही है।' मैं देख रहा हूँ, नहीं हो रही है। हम सब तो कोट में हाथ डाले बैठे है। बाहर निकालने का जी नहीं होता। हाथ अकड़ जायेगें।

लेकिन हम नहीं बजा रहे है, फिर भी तालियाँ बज रही हैं। मैदान में जमीन पर बैठे वे लोग बजा रहे है, जिनके पास हाथ गरमाने के लिये कोट नहीं है। लगता है, गणतन्त्र ठिठुरते हुये हाथों की तालियों पर टिका है। गणतन्त्र को उन्हीं हाथों की ताली मिलती है, जिनके मालिक के पास हाथ छिपाने के लिये गर्म कपड़ा नहीं है।

पर कुछ लोग कहते है – 'गरीबी मिटनी चाहिये।' तभी दूसरे कहते है – 'ऐसा कहने वाले प्रजातन्त्र के लिये खतरा पैदा कर रहे है।'

गणतन्त्र–समारोह में हर राज्य की झाँकी निकलती है। ये अपने राज्य का सही प्रतिनिधित्व नहीं करतीं। 'सत्यमेव जयते' हमारा मोटो है मगर झाँकियाँ झूठ बोलती हैं। इनमें विकास–कार्य, जनजीवन, इतिहास आदि रहते है। असल में हर राज्य को उस विशिष्ट बात को यहाँ प्रदर्शित करना चाहिये जिसके कारण पिछले साल वह राज्य मशहूर हुआ। गुजरात की झाँकी में इस साल दंगे का दृश्य होना चाहिये, जलता हुआ घर और आग में झोंके जाते बच्चे। पिछले साल मैनें उम्मीद की थी कि आन्ध्र की झाँकी में हरिजन जलाते हुये दिखाये जायेगें। मगर ऐसा नहीं दिखा। यह कितना बड़ा झूठ है कि कोई राज्य दंगे के कारण अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति पाये,लेकिन झाँकी सजाये लघु–उद्योगों की। दंगे से अच्छा गृह–उद्योग तो इस देश में दूसरा है नहीं। मेरे मध्यप्रदेश ने दो साल पहले सत्य के नजदीक पहुँचने की कोशिश की थी। झाँकी में अकाल–राहत कार्य बतलाये गये थे। पर सत्य अधूरा रह गया था। मध्यप्रदेश उस साल राहत–कार्यो के कारण नहीं, राहत–

कार्यो में घपले के कारण मशहूर हुआ था। मेरा सुझाव माना जाता तो मैं झाँकी में झूठे मस्टर-रोल भरते दिखाता, चुकारा करने वाले का अंगूठा हजारों मूर्खो के नाम के आगे लगवाता, नेता अफसर, ठेकेदार के बीच लेन-देन का दृश्य दिखाता। उस झाँकी में वह बात नहीं आयी। पिछले साल स्कूलों की 'टाट-पट्टी काण्ड' से हमारा राज्य महशूर हुआ। मैं पिछले साल की झाँकी में यह दृश्य दिखाता मन्त्री, अफसर वगैरह खड़े है और टाट-पट्टी खा रहे है।

जो हाल झाँकियों का, वही घोषणाओं का। हर साल घोषणा की जाती है कि समाजवाद आ रहा है। पर अभी तक नहीं आया। कहाँ अटक गया ? लगभग सभी दल समाजवाद लाने का दावा करते है, लेकिन वह नहीं आ रहा।

मैं एक सपना देखता हूँ। समाजवाद आ गया है और बस्ती के बाहर टीले पर खड़ा है। बस्ती के लोग आरती सजाकर उसका स्वागत करने को तैयार खड़े है। पर टीले को घेरे खड़े है कई तरह के समाजवादी। उनमें से हरेक लोगों से कहकर आया है कि समाजवाद को हाथ पकड़कर मैं ही लाऊँगा।

समाजवाद टीले से चिल्लाता है - 'मुझे बस्ती में ले चलो।'

मगर टीले को घेरे समाजवादी कहते है - 'पहले यह तय होगा कि कौन तेरा हाथ पकड़ कर ले जायेगा!'

समाजवाद की घेराबन्दी कर रखी है। संसोपा-प्रसोपावाले जनतान्त्रिक समाजवादी है, पीपुल्स डेमोक्रेसी और नेशनल डेमोक्रेसीवाले साम्यवादी है, दोनों

तरह के कांग्रेसी है, सोशलिस्ट यूनिटी सेण्टरवाले है। क्रान्तिकारी समाजवादी है। हरेक समाजवाद का हाथ पकडकर उसे वस्ती में ले जाकर लोगों से कहना चाहता है – 'लो, मैं समाजवाद ले आया।'

समाजवाद परेशान है। उधर जनता भी परेशान है। समाजवाद आने को तैयार खड़ा है, मगर समाजवादियों में आपस में धौल-धप्पा हो रहा है। समाजवाद एक तरफ उतरना चाहता है कि उस पर पत्थर पड़ने लगते है। 'खवरदार, उधर से मत जाना !' एक समाजवादी उसका हाथ पकड़ता है, तो दूसरा हाथ पकड़कर उसे खींचता है। तव बाकी समाजवादी छीना-झपटी करके हाथ छुडा देते हैं। लहूलुहान समाजवाद टीले पर खड़ा है।

इस देश में जो जिसके लिये प्रतिवद्ध है, वही उसे नष्ट कर रहा है। लेखकीय स्वतन्त्रता के लिये प्रतिवद्ध लोग ही लेखक की स्वतन्त्रता छीन रहे है। सहकारिता के लिये प्रतिवद्ध इस आन्दोलन के लोग ही सहकारिता को नष्ट कर रहे है। सहकारिता तो एक स्पिरिट है। सव मिलकर सहकारितापूर्वक खाने लगते है और आन्दोलन को नष्ट कर देते है। समाजवाद को समाजवादी ही रोके हुये है। यों प्रधानमन्त्री ने घोषणा कर दी है कि अव समाजवाद आ ही रहा है। मैं एक कल्पना कर रहा हूँ।

दिल्ली में फरमान जारी हो जोयगा – 'समाजवाद सादे देश के दौरे पर निकल रहा है। उसे सव जगह पहुँचाया जाय। उसके स्वागत और सुरक्षा का पूरा वन्दोवस्त किया जाय।'

एक सचिव दूसरे सचिव से कहेगा – 'लो, ये एक और वी. आई. पी. आ रहे है। अब इनका इन्तजाम करो। नाक में दम है।'

कलेक्टरों को हुक्म चला जायेगा। कलेक्टर एस. डी. ओ. को लिखेगा, एस. डी. ओ. तहसीलदार को।

पुलिस–दफ्तरों में फरमान पहुँचेगें, समाजवाद की सुरक्षा की तैयारी करो।

दफ्तरों में बड़े बाबू छोटे बाबू से कहेगें – 'काहे हो तिवारी बाबू, एक कोई समाजवादवाला कागज आया था न ! जरा निकालो !'

तिवारी बाबू कागज निकालकर देगें। बड़े बाबू फिर से कहेंगे 'अरे वह समाजवाद तो परसों ही निकल गया। कोई लेने नहीं गया स्टेशन। तिवारी बाबू, तुम कागज दबाकर रख लेते हो। बड़ी खराब आदत है तुम्हारी।'

तमाम अफसर लोग चीफ–सेक्रेटरी से कहेगें – 'सर, समाजवाद बाद में नहीं आ सकता ? बात यह है कि हम उसकी सुरक्षा का इन्तजाम नहीं कर सकेगें। दशहरा आ रहा है। दंगे के आसार है। पूरा फोर्स दंगे से निपटने में लगा है।'

मुख्य सचिव दिल्ली लिख देगा – 'हम समाजवाद की सुरक्षा का इन्तजाम करने में असमर्थ हैं। उसका आना अभी मुल्तवी किया जाये।'

जिस शासन-व्यवस्था में समाजवाद के आगमन के कागज दब जायें और जो उसकी सुरक्षा की व्यवस्था न करे, उसके भरोसे समाजवाद लाना है तो ले आओ। मुझे खास ऐतराज भी नहीं है। जनता के द्वारा न आकर अगर समाजवाद दफ्तरों के द्वारा आ गया तो एक ऐतिहासिक घटना हो जायेगी।

राम का दुख और मेरा :-

बादल गरज रहे हैं और मुझे गोस्वामीजी की यह अर्द्धाली याद आ रही है

घन घमण्ड नभ गरजत घोरा ।

प्रियाहीन डरपत मन मोरा ।।

यों रामचरित मानस में पूरा वर्षा-प्रसंग नीति-शिक्षण का एक बहाना है। राम लक्ष्मण को बाढ़ पर आयी क्षुद्र नदी दिखाते है और कहते हैं कि इसी प्रकार खल थोड़ें धन से ही बौरा जाता है। राम लक्ष्मण की नीति और धर्म में बहलाये रहते है, अपने मन में तनिक भी झाँकने नहीं देते। केवल यहीं उनकी सावधानी ढीली हुई है, जब वे कह उठते हैं कि चारों ओर मेघ घमण्ड से गरज रहे है और मैं प्रियाहीन हूँ तो मेरा मन डरता है।

इस अर्द्धाली का क्या अर्थ है? वैसे पेशेवर रामायणी इसके दस अर्थ निकालेंगे पर उनमें वह हरगिज नहीं होगा, जो तुलसीदास का अभिप्रेय है। एक-एक चौपाई के जब ये कई अर्थ निकालते हैं, तो मेरे मन में आता है कि इनसे कहूँ कि भाई, जिसकी बात के एक से अधिक अर्थ निकलें वह सन्त नहीं होता, लुच्चा आदमी होता है। सन्त की बात सीधी और स्पष्ट होती है और उसका एक ही अर्थ

निकलता है। तुम सन्त की बात के कई अर्थ निकालकर क्यों अनर्थ करते हो ? इनके द्वारा किया गया एक अर्थ यह है - 'प्रिया हीन' का अन्वय यों होगा - प्रिया-अहि-न, याने राम कहते है कि हे लक्ष्मण बादल गरजते है और मेरा मन डरता है। डर लगता है कहीं प्रिया को इस बरसात में सर्प न काट ले। इस अर्थ से चाहे कथावाचक की आरती की थाली पैसों से भर जाय, पर मेरा समाधान कैसे होगा ? सीता दूर है, तो राम का मन डरता क्यों है? क्या इसलिए कि न जाने सीता इस बरसात में कहाँ है? या इसलिए कि प्रिया के बिछोह से मन कमजोर हो गया? प्रिया पास होने से क्या पुरुष अधिक निडर होता है? लेकिन मेरा पड़ोसी बाबू तो उल्टी बात कहता है- भैया, अपन तो बाल-बच्चेवाले आदमी हैं, डरकर चलते है, सबकी सुन लेते है।

राम की बात राम जानें। बादलों की गर्जन से डरता मैं भी हूँ, पर इस डर का कारण जानता हूँ और बता भी सकता हूँ। नहीं, रामवाला कारण नहीं है। मेरे डर का कारण कोई हरण की गयी प्रिया नहीं है, यह मकान है, जिसकी छाया तले बैठा हूँ। राम इस भय को नहीं जानते थे। वे किसी किराये के मकान में चतुर्मास काटते तो भाई को ऐसी बातें थोड़े ही सिखाते कि हे लक्ष्मण, पर्वत बूँदों के आघात को ऐसे सह रहे हैं, जैसे सन्तजन दुष्टों के वचन सहते हैं। वे कहते है कि हे लक्ष्मण ! मेरे ठीक सिरहाने एक बड़ा टपका है; मुझे रात को नींद नहीं आयी। आज ठीक कराना। और लक्ष्मण 'जो आज्ञा' कहकर मकानवाले से शिकायत

करने चल देते। पर्वत चाहे बूँदों का आघात कितना ही सहें, लक्ष्मण बर्दाश्त नहीं करते। वे वाण मारकर बादलों को भगा देते या मकान मालिक का ही शिरच्छेद कर देते ह।

हमसे न वादल डरता है, न मकान मालिक। और हम एक कोने में दुबके वेठे छत से प्रगट होनेवाली जलधाराओं को देखते रहते है। गालिब का मकान भी मेरे ही जेसा रहा होगा। तभी एक चिट्ठी में लिखा है 'आसमाँ एक घण्टा बरसे तो घर दिन भर।' कवि रहीम इस कष्ट को कष्ट ही नहीं मानते, बल्कि बड़ा वरदान मानते है–

टूट खाट घर टपकत, टटिऔ टूट।

पिय की बाँह उसिसवा, रुख कै लूट ।।

रहीम की वात में समझता हूँ। सारी महत्ता उन खास किस्म के तकिये की ह। उससे सामने टूटी खाट, टपकते घर और टूटी टटिया की नहीं चल पाती। पर रुई के तकिये से यह चमत्कार कैसे पैदा होगा ? इस बात को आगे बढाना अच्छा नहीं।

आसमान के और मेरे हृदय में एक साथ धड़कन हो रही है। कविता लिखने के लिए व्यर्थ भय की अनुभूति नहीं वुलाता। यह वास्तविक भय है जिसके सामने कविता नहीं लिखी जाती, जान बचायी जाती ह। घर में इतना पानी भर जाता है कि कभी सोचता हूँ कि अगर फर्श पत्थर का न होता, तो इन कतारों में धान वो देता।

मकान मालिक का अपराध नहीं है। उसने मकान ऐसा बनवाया है कि पानी क्या, हवा तक न घुस सके। एक भी खिड़की नहीं है बस दीवारें है और ऊपर पत्थर सीमेंट की छत है। दो हजार वर्ष बाद यह पुरातत्ववेत्ताओं को ऐसा ही जमीन में गडा मिल जायगा। बरामदे में छत को थामे चार विशाल चौकोर स्तम्भ खडे हैं। बडे मजबूत ! ग्रीक पुराणों के एटलस को पता लग जाय तो इन स्तम्भों पर आसमान को रखकर तनिक सुस्ता ले। यदि किसी अच्छे पुरातत्ववेत्ता को यह मकान दिख जाय तो वह फौरन निष्कर्ष निकाल ले कि वास्तुकला में मोहनजोदड़ों के खँडहरों से मिलता है और खोदकर यहाँ जमा दिया गया है। ऐसा शानदार मकान है। पर यह टपकता है।

वर्षा के पहिले दौर में जब पानी टपका तो सोचा कि इतना सह लेगें मकान मालिक से मरम्मत के लिए नहीं कहा। (गरीब आदमी का व्यर्थ पैसा क्यों खर्च हो?) पर ज्यों - ज्यों टपके भी बढते गये। तब हमने मकान मालिक को कष्ट दिया। उसने अपने सामने दो बार सीमेंट का प्लास्टर पुतवाया। हमें बाद में समझ में आया कि यदि वह इतनी दिलचस्पी न लेता और सामने प्लास्टर न कराता, तो पानी तभी बन्द हो जाता (तब जरा मोटा प्लास्टर हो सकता था) खैर, उस वक्त तो हम प्रभावित हुए थे। पर जब फिर भी पानी आना बन्द न हुआ तो हम सब परेशान हुए कि आखिर पानी आता कहाँ से है। किसी अखबार को मालूम हो जाता तो वह छाप देता कि भगवान का चमत्कार देखो, पत्थर में से जलधारा प्रकट हो रही। श्रद्धालु वहीं अन्ध-विश्वास की वेदी पर बलि हो गये।

एक दिन हमने इंजिनियरिंग कालेज से इसी वर्ष डिग्री पानेवाले एक तरुण इंजिनियर को वह चमत्कार दिखाया। उसने ध्यान से जाँच कर कहा, ''ठीक है, समझ गया। ऊपर से प्लास्टर हो ही चुका है। इसमें भीतर से सेंधों में सीमेंट और रेत भरवा दीजिए। भीतर से प्लास्टर हो जाने पर एक बूँद नहीं आयेगी।'' मैं इस युक्ति से प्रभावित हो गया। पर मेरे भाई में व्यवहार -बुद्धि अधिक है। उसने कहा, '' ऐसा करने से दीवारों में पानी घुसता जायेगा और किसी दिन ऊपर दीवार खसक पड़ेगी।'' इंजीनियर ने उत्तर नहीं दिया। उसे एक जरूरी काम याद आ गया। मैं समझ गया कि ज्यों-ज्यों देश में इंजीनियरिंग कालेज खुलते जा रहे हैं, त्यों-त्यों कच्चे पुल और तिड़कनेवाली इमारतें क्यों अधिक बनते जा रहे है। और जब हर जिले में इंजीनियरिंग कालेज हो जायेगा, तब हम लोग कहाँ रहेंगे?

एक दिन परिचित पधारे। इनके भी दो मकान किराये पर चल रहे थे और इस तरह वे हमारे मकान मालिक के 'मौसी के लड़के' होते थे। सगे नहीं, पर सगे से अधिक याने व्यवसायिक आधार पर। उन्होंने छत को ऊपर से देखा और बोले, ''इसमें प्लास्टर कराना चाहिए।'' हमने कहा, ''दो बार तो हो चुका।'' वे हँसकर बोले, ''प्लास्टर नहीं हुआ, सीमेंट पोती गयी है। मकान वालें से कहो कि मोटा प्लास्टर करवाये।'' हमने कहा, ''कितना तो कहा। यहाँ तक कह दिया कि किसी दिन यह छत गिरेगी, तो हमारी जान चली जायेगी।'' यह सुनकर वह दार्शनिक

की तरह बोले, ''अपनी जान जाने की बात कहने से काम नहीं चलेगा। यह कहो कि तुम्हारी दीवार गिर जायेगी और तुम्हारा नुकसान हो जायेगा। समझे? तुम देखोगे कि फौरन चार इंच मोटा प्लास्टर हो जायगा।'' मकान की मरम्मत कोई तुम्हारी जान बचाने के लिए थोडे ही की जायेगी, दीवार बचाने के लिए की जायेगी।''

व्यवसायिक आधार पर दीवार और मनुष्य के तुलनात्मक मूल्य के सूत्र की हमने गाँठ बाँध ली। हमने कल जब दीवार गिरने की आशंका मकान मालिक के सामने प्रकट की, तो उसने फौरन नौकर को हुक्म दिया कि पानी खुलते ही अच्छा मोटा प्लास्टर कराना।

हम अब पानी खुलने की राह देख रहे हैं। बादल गरज-गरजकर मन कँपा जाते हैं। राम प्रियाहीन थे, इसलिए डरते थे। हम गृहहीन हैं, इसलिए डरते हैं। किसका अभाव बड़ा है?

बेईमानी की तरह यह थोड़ा- सा मांस मेरे ऊपर चिपक गया है। मेरे दुश्मनों, एक वैज्ञानिक तथ्य तुम्हारे सामने है। मैं मोटा होकर कमजोर हो गया हूँ। मेरी बदनामी उड़ाने का ऐसा सुनहला अवसर तुम्हें कभी नहीं मिलेगा। तुम जल्द करो। मेरा क्या ठिकाना ? मैं चार दिनों बाद फिर दुबला हो जाऊँगा। तब तुम हाथ मलते रह जाओगे।

दूसरे के ईमान के रखवाले :-

पहले जिन चीजों पर दुःख होता था, अब उन पर क्रोध आने लगा। क्रोध पाप का मूल कहा जाता है - यानी अब अपनी पाप करने की 'स्टेज' आ

गयी। मगर अक्रोध क्या पाप नहीं है ? अक्रोध बैल को पिटवाता है और क्रोध साँड की पूजा करवाता है। अपने व्यक्तित्व को चाबुक के लिए निमन्त्रण-पत्र बनाना क्या पुण्य होता होगा? और क्या सारे बैल स्वर्ग जाते होंगे? अक्रोध के ऐसे पुण्य से क्रोध का पाप अच्छा लगने लगा है। सुना है, बिहार के भूखों की आँखों में भी पीड़ा के साथ लाल डोरे दिखने लगे हैं। शायद पुण्य-पर्व शुरु हो गया। जिस गति से सामूहिक दुख क्रोध में बदलता जायेगा, उसी गति से दुख कम होता जायेगा। 'हाय' को 'क्यों बे' में और 'धिक' को 'धत्' में जल्दी बदल जाना चाहिए। फिर निकम्मे सदियों तक पाप-पुण्य का फैसला करते रहें। वे तो अभी भी फ्लैटों में बैठे 'अस्तित्व के प्रश्न ' की आध्यात्मिक पीड़ा का मजा ले रहे हैं।

कैसी बात कही है! मसीही अन्दाज में! अब मैं चाहूँ तो हाथों की अँगुलियों को फँसाकर, घुटने पर रखकर, मूर्ख की तरह खाली आँखों से आसमान देखते हुए बैठा रहूँ। लोग कहेंगे - ज्ञानी अभी-अभी एक तत्व की बात कहकर दूसरी की तलाश कर रहा है। मिलते ही फिर कहेगा। मैं चाहूँ तो कुछ न बोलूँ और लोग कहें -ज्ञानी के मौन में भी स्वर होते हैं। सुनों, तत्व-कथन हो रहा है।

मगर ज्ञानी न जाने क्यों मनहूस हो जाता है। फूल उसे दिखाओ तो वह उसकी जड़ का कीचड देखने लगता है और उदास हो जाता है - हाय, यह सौन्दर्य मिथ्या क्यों नहीं है ? ज्ञानी कहेगा - वत्स, ज्ञान का सार ही यह है कि जो सुन्दर है, वही मिथ्या है। कुरुपता सत्य है। जो अच्छा है, वही निस्सार है। जो बुरा है, वह सब ठोस है। वैसे तो जगत का वैभव ही मिथ्या माया है। तब अज्ञानी

पूछता है– अगर सब मिथ्या माया है, तो मठ की गद्दी के लिए शंकराचार्य हाईकोर्ट में मुकदमा क्यों लडते हैं? हम अज्ञानियों को कीचड की सत्यता इसलिए तो नहीं बतायी जाती कि ज्ञानी खुद फूल झपट ले?

अज्ञानियों के ऐसे टेढ़े सवालों के डर से ही मेरी ज्ञानी बनने की हिम्मत नहीं होती। यों सम्भावनाएँ सब हैं। अभी तो अज्ञानी की तरह क्रोध कर रहा हूँ। पिछले दिनों काफी अविस्मरणीय क्रोध कर डाले हैं मैंने। पिछला महत्वपूर्ण क्रोध एक साहित्यिक समारोह के मौके पर आया था। कुछ साहित्यिक समारोह यज्ञ की तरह किये जाते हैं। करने वाले इसे बडा पवित्र अनुष्ठान मानते है (ज्ञानी बताते हैं) और कुछ विश्वास पैदा करना चाहते हैं कि ज्यों ही मन्त्र–स्वर और यज्ञ–धूम आकाश में व्याप्त होंगे, मेघ बरसेंगे, भूमि अन्न उगल देगी और हिन्दी के सारे लेखकों का कल्याण होगा। और कहीं यह साहित्यक यज्ञ नहीं हुआ, तो सृष्टि के नाश का डर है। संयोजकों की भारी पलकों और कपाल की रेखाओं से, बस्ता दबाये जमीन देखती हुई चिन्तित चाल से यही लगता है कि दुनिया की जिम्मेदारी इन्होंने ले ली है। मगर चतुर लेखक ऐसे पवित्र समारोह से छड़कता है, जैसे चतुर अनाथ बालक अनाथालय से बचता है– वह जानता है वहाँ बाजा बजाकर चन्दा माँगना पड़ेगा। ऐसा समारोह क्योंकि यज्ञ होता है, उसके लिए आहूति भी खोजी जाती है। अगर अश्वमेध कोटि का यज्ञ है, तो घोड़े की प्रकृति का लेखक खोजा जायेगा। ऐसे समारोह वालों से पहले ही पूछ लेना चाहिए– आपका उद्देश्य पवित्र तो नहीं है ? कहीं आप बिल्कुल निःस्वार्थ भाव से तो यह समारोह नहीं कर रहे हैं?

यदि उद्देश्य पवित्र हो और करने वालों का कोई स्वार्थ ही न हो, तो बच जाना चाहिए। जो आदमी स्वार्थ का बिल्कुल विसर्जन कर दे, वह बहुत खतरनाक हो जाता है। वह दूसरे के प्राण तक ले लेना अपना नैतिक अधिकार समझता है।

पर कभी-कभी चतुर आदमी भी गच्चा खा जाते हैं। नागार्जुन खा गये। सैकडों मील दूर पटना से बुलाकर उनके दम पर कवि-सम्मेलन जमाकर संयोजक ने उन्हें तीसरे दर्जे का किराया दिया और कुहनी तक हाथ जोड़कर सिर उन पर रखा और झुक गये। यह मुद्रा ही लाख रुपये की होती है पता नहीं इसकी ट्रेनिंग मिलती है। मैंने बहुत कोशिश की, बनती ही नहीं है। वृद्ध आचार्यो से तरुण शिष्य इसे सहज ही सीख लेते हैं।

मुझे ऐसी विनय पर गुस्सा आता है। न जाने क्या बात होती है ऐसी विनय में जो चिमटी काटती है। तबीयत हुई कि उनके हाथ और सिर इसी तरह बाँधकर रस्सी नागार्जुन के हाथ में दे दूँ, कि ले बाबा, ले जा पटने। नागार्जुन साधु रह चूके हैं। क्रोध को जीतना (या प्रगट न होने देना) साधु की ट्रेनिंग में आता है। अव 'कोर्स' बढ गया है-जुलूस निकालना, संसद को घेरना और पेट्रोल छिड़ककर माया में आग लगाना भी साधु को सीखना पडता है। तो नागार्जुन ने पूर्व-स्मृति के कारण कह दिया - यह भी मत दीजिए। मुझे तो साधु बनने का मौका आया नहीं था। मैंने अधम संसारी की तरह क्रोध कर डाला।

संयोजक होशियार होते हैं। उन्होंने जबाब दिया–यह तो साहित्य का ही काम था। सभी ने यथायोग्य योगदान किया। फिर नागार्जुनजी के प्रति हमारे मन में इतनी श्रद्धा है कि उसके सामने कितने भी रुपये तुच्छ हैं।

जिसे देना है, वह लेने वालों को रुपये की तुच्छता सदियों से सिखा रहा है। पर मूढ़ लेनेवाला सीखता ही नहीं है।

मैंने कहा–तो अब आप लाउडस्पीकर वाले से भी कहेंगे–भई, यह तो साहित्य का काम था। फिर तुम्हारे प्रति हमारे मन में अगाध श्रद्धा है, इसलिए किराया मत लो।

संयोजक समझे कि मैं हास्य रस पैदा कर रहा हूँ। हँसना बरी होना है। बरी उन्हें होने नहीं दिया। पूछा– बिजली वाले और शामियाने वाले के प्रति भी आपके मन में श्रद्धा होगी ?

जवाब मिला–इनके प्रति श्रद्धा क्यों होगी?

–इसलिए इन्हें पूरे पैसे देंगे। नागार्जुन के प्रति श्रद्धा है, इसलिए उन्हें पैसे नहीं देंगे।

अब वे समझे कि यह तो हास्य रस नहीं है। रौद्र से वीभत्स रस हुआ जा रहा है। वे शान्त रस पर आ गये। कहने लगे–रुपये खत्म हो गये हैं। एक हजार एक जगह से आने वाले हैं। तब मनीआर्डर से और भेज देंगे।

सुना है, भगवान ने एक बार स्वर्ग में कवि–सम्मेलन करवाया था और कवि से कहा था– तुम जाओ। पैसा बाद में भेज देंगे। तब कवि ने कहा था–प्रभु,

बाद में कोई नहीं भेजता। मैं रुक जाता हूँ, आप पैसे का प्रबन्ध कर लीजिए। मैं तो लेकर ही जाऊँगा। इस मामले में भगवान का भी भरोसा नहीं।

इस बात को इतना क्यों खींच रहा हूँ ? साधारण-सी बात है। अक्सर होती है। बात यह है कि मैं तय नहीं कर पा रहा हूँ कि कौन ठीक है-मैं या संयोजक? मैं मान बैठा कि वे लोग कर्त्तव्य से गिर रहे हैं। और वे कहते होंगे कि हम लोग इतना-सा साहित्य के प्रति कर्त्तव्य भी नहीं करना चाहते। नाप बदले-से लगते हैं। दूसरे से उसका कर्त्तव्य कराने का कर्त्तव्य कर रहे होंगे। इस तरह वे ठीक हुए और हम गलत।

देखता हूँ हर आदमी दूसरे के ईमान के बारे में विशेष चिन्तित हो गया है। दूसरे के दरवाजे पर लाठी लिये खड़ा है-क्या कर रहे हैं साहब? इसके ईमान की रखवाली कर रहा हूँ? -मगर अपना दरवाजा तो आप खुला छोड़ आये हैं!-तो क्या हुआ? हमारी ड्यटी तो इधर है।

एक लेखक दिल्ली, बम्बई, प्रयागादि घूमकर आता है, तो बड़ी चिन्ता से मुझसे कहता है-सब ईमान बेच रहे हैं। जानता हूँ, उधर कहता होगा कि जबलपुर वालों का भी बिक रहा है। सस्ता बिक रहा है। दूसरों का ईमान बिकने की चिन्ता में बेचारा दुबला होता जा रहा है। मैं पूछता हूँ-कैसे बिक रहा ईमान ? थोक या फुटकर ? अगर किसी के पास ज्यादा ईमान हो जाये, तो जमा करना यों ही कानून में जुर्म है। उसे तो निकालना ही पड़ेगा। वह बेचारा किस-किसके ईमान की रखवाली करेगा? कहीं बाजार में पिट जाने का दुःख तो इसे नहीं हो रहा है?

सोचकर घुनता होगा-हाय, लोगों का रद्दी, सड़ा हुआ ईमान धड़ल्ले से बिक रहा है, मगर हमारे शुद्ध ताजा ईमान के दाम ही नहीं लग रहे हैं।

एक खानदानी रईस मेरे बारे में चिन्तित हैं। उन्हें लगता है मैं नौकरी नहीं करता, तो कोई काम ही नहीं करता। कहते हैं-निठल्ला है। अरे, इन्सान को काम करना चाहिए। वे इन्सान हैं और रोज इतना काम करते हैं-सुबह से सोचते रहते हैं कि शाम को क्या खायेंगे। रात को यह सोचते-सोचते थककर सो जाते हैं कि सुबह नाश्ते में क्या खायेंगे।

मैं हैरत में हूँ कि दूसरों का कितना ध्यान आदमी रखने लगा है। अच्छी चीजें दूसरों के लिए छोड़ रखी है, बुरी खुद ले ली हैं।

-हमारे लिए आपने क्या रखा है, भैया साहब?

-त्याग, बलिदान, निःस्वार्थ!

-और अपने लिए?

-क्षुद्र स्वार्थ! नीच लोभ!

-हमारे लिए आपने क्या छोड़ रखा है, राष्ट्ररत्नजी?

-सेवा, पद के प्रति निर्मोह!

-और खुद क्या ले लिया है?

-घृणित पदलोलुपता!

अच्छी चीजें दूसरों के लिए छोड़ देने वालों के प्रति मुझ जैसे का क्रोध नाजायज है। कृतज्ञ होना चाहिए कि उन्होंने सब अच्छी चीजें हमें दे दी हैं। खुद बेचारे क्षुद्र चीजों को भुगत रहे हैं।

वैष्णव की फिसलन :-

वैष्णव करोड़पति है। भगवान विष्णु का मन्दिर। जायदाद लगी है। भगवान सूदखोरी करते हैं। ब्याज से कर्ज देते है। वैष्णव दो घण्टे भगवान विष्णु की पूजा करते हैं, फिर गादी-तकियेवाली वैठक में आकर धर्म को धन्धे से जोड़ते हैं धर्म धन्धे से जुड़ जाय, इसी को 'योग' कहते हैं। कर्ज लेनेवाले आते हैं। विष्णु भगवान के वे मुनीम हो जाते हैं। कर्ज लेनेवाले से दस्तावेज़ लिखवाते हैं-

'दस्तावेज़ लिख दी रामलाल वल्द श्यामलाल ने भगवान विष्णु वल्द नामालूम को ऐसा जो कि-

वैष्णव वहुत दिनों से विष्णु के पिता के नाम की तलाश में है, पर वह मिल नहीं रहा। मिल जाय तो वल्दियत ठीक हो जाय।

वैष्णव के पास नम्बर दो का बहुत पैसा हो गया है। कई एजेन्सियाँ ले रखी हैं। स्टाकिस्ट हैं। जव चाहे माल दबाकर 'ब्लैक' करने लगते हैं। मगर दो घण्टे विष्णु-पूजा में कभी नागा नहीं करते। सव प्रभु की कृपा से हो रहा है। उनके प्रभु भी नम्वरी हैं। एक नम्बरी होते, तो ऐसा नहीं करने देते।

वैष्णव सोचता है- अपार नम्बर दो का पैसा इकट्‌ठा हो गया है। इसका क्या किया जाय? वढ़ता ही जाता है। प्रभु की लीला है। वही आदेश देंगे कि क्या किया जाय।

वैष्णव एक दिन प्रभु की पूजा के बाद हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा- प्रभु, आपके ही आशीर्वाद से मेरे पास इतना सारा दो नम्वर का धन इकट्‌ठा हो

गया है। अव मैं इसका क्या करूँ? आप ही रास्ता वताइये। मैं इसका क्या करूँ? प्रभु, कष्ट हरो सबका !

तभी वैष्णव की शुद्ध आत्मा से आवाज उठी–अधम, माया जोड़ी है, तो माया का उपयोग भी सीख। तू एक वडा होटल खोल। आजकल होटल बहुत चल रहे हैं।

वैष्णव ने प्रभु का आदेश मानकर एक विशाल होटल बनवायी। बहुत अच्छे कमरे। खूबसूरत बाथरूम। नीचे लाण्ड्री। नाई की दूकान। टैक्सियाँ। बाहर बढ़िया लान। ऊपर टेरेस गार्डन।

और वैष्णव ने खूब विज्ञापन करवाया।

कमरे का किराया तीस रुपये रखा।

फिर वैष्णव के सामने धर्म–संकट आया। भोजन कैसा होगा? उसने सलाहकारों से कहा–मैं वैष्णव हूँ। शुद्ध शाकाहारी भोजन कराऊँगा। शुद्ध घी की सब्जी, फल, दाल, रायता, पापड़ वगैरह।

बड़े होटल का नाम सुनकर बड़े लोग आने लगे। बड़ी–बड़ी कम्पनियों के एक्जीक्यूटिव, बड़े अफसर और बड़े सेठ।

वैष्णव सन्तुष्ट हुआ।

पर फिर वैष्णव ने देखा कि होटल में ठहरने वाले कुछ असन्तुष्ट है।

एक दिन कम्पनी का एक्जीक्यूटिव बड़े तैश में वैष्णव के पास आया। कहने लगा, ''इतने महँगे होटल में हम क्या यह घास–पत्ती खाने के लिए ठहरते हैं। यहाँ 'ननवेज' का इन्तजाम क्यों नहीं हैं?''

वैष्णव ने जवाब दिया, ''मैं वैष्णव हूँ। मैं गोश्त का इन्तजाम अपने होटल में कैसे कर सकता हूँ ?''

उस आदमी ने कहा, ''वैष्णव हो, तो ढाबा खोलो। आधुनिक होटल क्यों खोलते है? तुम्हारे यहाँ आगे कोई नहीं ठहरेगा।''

वैष्णव ने कहा, ''यह धर्म-संकट की बात है। मैं प्रभु से पूछूँगा।''

उस आदमी ने कहा, ''हम भी बिजनेस में हैं। हम कोई धर्मात्मा नहीं हैं-न आप, न मैं।''

वैष्णव ने कहा, ''पर मुझे तो यह सब प्रभु विष्णु ने दिया है। मैं वैष्णव धर्म के प्रतिकूल कैसे जा सकता हूँ? मैं प्रभु के सामने नत-मस्तक होकर उनका आदेश लूँगा।''

दूसरे दिन वैष्णव साष्टांग विष्णु के सामने लेट गया। कहने लगा- प्रभु, यह होटल बैठ जायेगा। ठहरनेवाले कहते हैं कि हमें वहाँ बहुत तकलीफ होती है। मैंने तो प्रभु, वैष्णव भोजन का प्रबन्ध किया है। पर वे मांस माँगते हैं। अब मैं क्या करूँ ?

वैष्णव की शुद्ध आत्मा से आवाज आयी - मूर्ख , गांधीजी से बड़ा वैष्णव इस युग में कौन हुआ है ? गांधी का भजन है-'वैष्णव जन तो तेणे कहिये, जे पीर पराई जाणे रे।' तू इन होटलों में रहने वालों की पीर क्यों नहीं जानता ? उन्हें इच्छानुसार खाना नहीं मिलता। इनकी पीर तू समझ और उस पीर को दूर कर।

वैष्णव समझ गया।

उसने जल्दी ही गोश्त, मुर्गा मछली का इन्तजाम करवा दिया।

होटल के ग्राहक बढ़ने लगे।

मगर एक दिन फिर वही एक्जीक्यूटिव आया।

कहने लगा, ''हाँ, अब ठीक है। मांसाहार अच्छा मिलने लगा। पर एक बात है।''

वैष्णव ने पूछा, ''क्या?''

उसने जवाब दिया, ''गोश्त के पचने की दवाई भी तो चाहिए।''

वैष्णव ने कहा, ''लवण भास्कर चुर्ण का इन्तजाम करवा दूँ ?''

एक्जीक्यूटिव ने माथा ठोंका।

कहने लगा, ''आप कुछ नहीं समझते। मेर मतलब है–शराब। यहाँ बार खोलिए।''

वैष्णव सन्न रह गया। शराब यहाँ कैसी पी जायगी? मैं प्रभु के चरणामृत का प्रबन्ध तो कर सकता हूँ पर मदिरा ! हे राम!

दूसरे दिन वैष्णव ने फिर प्रभु से कहा– प्रभु, वे लोग मदिरा माँगते हैं। मैं आपका भक्त, मदिरा कैसे पिला सकता हूँ?

वैष्णव की पवित्र आत्मा से आवाज आयी–मूर्ख, तू क्या होटल बिठाना चाहता है? देवता सोमरस पीते थे। वही सोमरस यह मदिरा है। इसमें तेरा वैष्णव-धर्म कहाँ भंग होता है। सामवेद में तिरसठ श्लोक सोमरस अर्थात् मदिर की स्तुति में हैं! तुझे धर्म की समझ है या नहीं ?

वैष्णव समझ गया।

उसने होटल में 'बार' खोल दिया।

अब होटल ठाठ से चलने लगा। वैष्णव खुश था।

फिर एक दिन एक आदमी आया। कहने लगा, ''अब होटल ठीक है। शराब भी है। गोश्त भी है। मगर मरा हुआ गोश्त है। हमें जिन्दा गोश्त भी चाहिए।''

वैष्णव ने कहा, ''अरे बाप रे!''

उस आदमी ने कहा, ''इसमें अरे बाप रे ' की कोई बात नहीं। सब बड़े होटलों में चलता है। यह शुरु कर दो तो कमरों का किराया बढ़ा सकते हो।''

वैष्णव ने कहा, ''मैं कट्टर वैष्णव हूँ। मैं प्रभु से पूछूँगा।''

दूसरे दिन फिर वैष्णव प्रभु के चरणों में था कहने लगा–प्रभु, वे लोग कहते हैं कि होटल में नाच भी होना चाहिए। आधा नंगा या पूरा नंगा।

वैष्णव की शुद्ध आत्मा से आवाज आयी– मूर्ख, कृष्णावतार में मैंने गोपियों को नचाया था। चीर–हरण तक किया था। तुझे क्या संकोच है?

प्रभु की आज्ञा से वैष्णव ने 'कैबरे' भी चालू कर दिया।

अब कमरे भरे रहते थे–शराब, गोश्त और कैबरे।

वैष्णव बहुत खुश था। प्रभु की कृपा से होटल भरा रहता था।

कुछ दिनों बाद एक ग्राहक ने 'बेयरा' से कहा, ''इधर कुछ और भी मिलता है?''

बेयरा ने पूछा, ''और क्या, साब?''

ग्राहक ने कहा, ''अरे यही मन बहलाने के कुछ ? कोई ऊँचे किस्म का माल मिले तो लाओ।''

बेयरा ने कहा, ''नहीं साब, इस होटल में यह सब नहीं चलता।''

ग्राहक वैष्णव के पास गया। बोला, ''इस होटल में कौन ठहरेगा ? इधर रात को मन बहलाने का कोई इन्तजाम नहीं है।''

वैष्णव ने कहा, ''कैबरे तो है साहब।''

ग्राहक ने कहा, ''कैबरे तो दूर का होता है। बिल्कुल पास का चाहिए, गर्म माल, कमरे में।''

वैष्णव फिर धर्म संकट में फस गया।

दूसरे दिन वैष्णव फिर प्रभु की सेवा में गया। प्रार्थना की–कृपा निधान ग्राहक लोग नारी माँगते है–मूर्ख, यह तो प्रकृति और पुरुष का संयोग है। इसमें क्या पाप और क्या पुण्य? चलने दे।

वैष्णव ने बेयरों से कहा–चुपचाप इन्तजाम करा दिया करो। जरा पुलिस से बचकर, पच्चीस फीसदी भगवान की भेंट ले लिया करो।

अब वैष्णव का होटल खूब चलने लगा।

शराब गोश्त, कैबरे और औरत।

वैष्णव–धर्म बराबर निभ रहा है।

इधर यह भी चल रहा है।

वैष्णव ने धर्म को धन्धे से खूब जोड़ा है।

संस्कारों और शास्त्रों की पढ़ाई :-

मेरे एक दोस्त है। वैज्ञानिक दृष्टिवाले आधुनिक बुद्धिवादी। कट्टर मार्क्सवादी है। परिवार से नाता तोड़कर बीसेक सालों से राजनैतिक कार्यो में लगे हैं। उनका भी कोई है, मुझे पता नहीं था। पर उनका भी कोई था। पिछले हफ्ते वे प्रयाग की गाड़ी में मुण्ड सिर मिल गये।

पूछा, ''कहाँ जा रहे हो ?''

बोले, ''प्रयाग।''

लोग चोरी करने जाते हैं, तब इस शहर को इलाहाबाद कहते हैं। पिण्डदान करने जाते हैं, तब प्रयाग कहते हैं।

पूछा, ''मुण्डन किसलिए ?''

बोले, ''फादर की मृत्यु हो गयी।''

मैने कहा, ''मुझे पहली बार मालूम हुआ कि आप भी फादर रखते थे।''

यों कोई बुरी बात नहीं है। जिनकी हैसियत है, वे एक से ज्यादा भी बाप रखते हैं-एक घर में,एक दफ्तर में, एक-दो बाजार में, एक-एक हर राजनैतिक दल में। इधर एक आदमी है जिसके परसों तक पैंतीस बाप थे। कल संविद सरकार टूट रही थी तो पन्द्रह रह गये। आज वह सरकार थम गयी तो उसके अड़तीस हो गये हैं।

मुझे उनके पिता की मृत्यु का कतई दुख नहीं था। उन्हें मैं जानता नहीं था। फिर वे अस्सी के थे और उनके मरने से कोई अनाथ नहीं हुआ था। दोस्त को भी दुख नहीं था कुछ पछतावा जरूर था।

मुझे उसकी चिन्ता थी जिसे उन्होंने बीस सालों से सच्चा पिता मान रखा था–याने मार्क्सवाद की। उन्होंने खुद अपने हाथों मार्क्सवाद का मुण्डन कर दिया था।

उनके हाथा में एक छोटी–सी थैली थी। मैंने पूछा, ''इसमें क्या है ?'' बोले, ''उनकी राख है। तुम्हें इतना भी नहीं मालूम ?''

मैंने कहा, ''मै समझा, इसमें द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है, जिसका संगम में विसर्जन होगा।''

पहले वे चिढ़े। फिर कहने लगे, ''यार , यह बड़ा विकट संघर्ष है। एक तो संस्कार और फिर परिवार की भावना।''

इस संघर्ष से मैं अनजान नहीं। चाचा की मृत्यु के बाद मैंने श्राद्ध नहीं करने का एलान कर दिया। मेरी तो फजीहत हुई, मैं ही जनता हूँ। उनके करने वाले और भी थे। चाचा मेरे भरोसे तो परलोक गये नहीं थे। मुझ जैसे के भरोसे कोई परलोक क्या, यह लोक भी नहीं बतायेगा।

मेरे मन में एक ही सवाल था–अगर किसी सामाजिक क्रान्ति में बोद्धिक विश्वास के साथ कोई लगा हो, और तभी चाची कह दे कि वेटा, तुम्हारे चाचा की आत्मा को दुख होगा, परलोक में उनकी दुर्गति हो जायेगी तव क्रान्तिकारी क्या करेगा ? परिवार की भावना की रक्षा भी तो करनी पडती है। तव क्या वह यह कहेगा कि चाची, अगर तुम्हारी यह भावना है तो मैं क्रान्ति को छोड़े देता हूँ।

मेरे एक और दोस्त हैं। मुझसे ज्यादा वैज्ञानिक दृष्टि-सम्पन्न, विचार और कर्म दोनों से क्रान्तिकारी। मैं ही उनसे ज्ञान और प्रेरणा लेता रहा हूँ। एक दिन मैंने उन्हें धोती पहने, पालथी मारे सत्यनारायण की कथा पर बैठे, रँगे होथों पकड़ लिया।

मुझे लगा, जैसे एम्बुलैंस की गाड़ी ने ही मुझे कुचल दिया हो।

मैंने दूसरे दिन उससे पूछा, ''झूठ नारायण, यह तुम्हारी क्या हरकत है?'' उसने कहा, ''यार, 'मदर इन ला, (सास) ने बहुत जोर डाला था।''

मेरा ख्याल था, 'मदर इन ला' सास से अलग किस्म की होती होगी। नहीं, सिर्फ तजुर्बे का फर्क है।

यह जो 'मदर इन ला' कहलाती है, क्रान्ति की दुश्मन होती है। क्रान्ति कारी का पहला और सबसे बड़ा संघर्ष 'मदर इन ला' से निपटना है। बात यह है कि वह बीवी दे देती है। बीवी कर्त्तव्य को आगे बढ़ाते हुए बच्चे दे देती है। तब 'मदर इन ला' आकर कहती है, ''लाला, अपना नहीं तो बच्चों का तो ख्याल करो।''

लाला की क्रान्तिकारिता भ्रान्तिकारिता में बदल जाती है।

'मदर इन ला' के शिकार बीस-पच्चीस क्रान्तिदर्शियों की हड्डियाँ तो इधर मेरे पास ही रखी हुई हैं। और लोगों के पास भी होगी।

संस्कार और शास्त्र की पढ़ाई बड़ी दिलचस्प होती है। संस्कार और अर्थशास्त्र की एक पढ़ाई मैंने साफ देखी।

एक शहर में दो साल पहले किसी सांस्कृतिक आयोजन में गया था। एक साहित्यिक रुचि के सज्जन बहुत पीछे पड़े कि मेरे घर चाय पीने चलिए। हर बार आग्रह के साथ वे यह जरूर जोड़ते–सरिता ने भी कहा है। समझा, सरिताजी इनकी पत्नी होगी। साहित्य पढ़ती होंगी। कुछ कविता वगैरह भी लिखती होंगी। चाय पीनें पहुँचा, तो बैठक से उन्होंने पर्दे की तरफ मुँह करके मेरे आने की घोषणा कर दी। दुविधाग्रस्त अर्द्ध आधुनिक परिवारों में इसके बाद क्या होता है इसका मुझे अनुभव है। पत्नी आती है। नमस्ते के बाद बने–बनाये वाक्य बोलती है–हम आपकी कहानियाँ पढ़ते रहे हैं। इतनी हँसी आती है कि 'दाम्पत्य संहिता' का नियम ७३ कहता है–'पत्नी अपना स्वतन्त्र मत व्यक्त न करे। व्यक्त करना जरूरी हो, तो उसमें पति को शामिल करे।' वह पति को शामिल कर लेती है–'क्यों, वह कौन–सी कहानी पढ़ी थी हम लोगों ने पिछले हफ्ते?'

अगर बच्चा भी हुआ, तो 'अंकलजी' को उससे नमस्ते कराया जाता है। कहा जाता है–अंकल तुम्हें बहुत मजेदार कहानी सुनायेंगे। कभी मुझसे वहीं बच्चे को कहानी सुनाने का आग्रह भी किया जाता है। नुस्खें मेरे पास सब तरह के रहते हैं। प्रौढ़ों के लिए डायबटीज का नुस्खा भी रखता हूँ और बच्चों के लिए कुकुर खाँसी का भी। मैं बच्चे को राक्षस की कहानी फौरन सुना देता हूँ। आग्रह हो तो उनके ससुर को भी कृष्ण–सुदामा की कहानी सुना दूँ।

वैठक में मैंने सोचा कि अब सरिताजी बाहर आयेंगी और वही यान्त्रिक चर्चा चलेगी। बड़ी देर हो गयी। सरिताजी तो क्या, नालीजी भी नही निकलीं। सोचा, चाय लेकर आयेंगी। पर थोड़ी देर वाद साँकल बजी। पति महोदय भीतर गये और चाय की ट्रे लेकर आ गये।

भीतर से एक बिल्ली निकली। उस घर में बिल्ली एकमात्र मादा थी, जो पर्दा नहीं करती थी।

साँकल धातु युग से चली आती घरेलू 'कालबेल' है। सरिताजी कुछ संस्कार अपने घर से लेकर आयी होंगी, कुछ यहाँ मिले होंगे। वह पाँव दरवाजे की तरफ बढाती हैं तो हाथ साँकल पर चला जाता है।

मगर जब यह स्थिति है, तो इस आदमी ने बार-बार क्यों कहा था-सरिता ने भी आने को कहा है। इस दृष्य में सरिता का कुल इतना 'रोल' है कि नेपथय में साँकल को निकाल फेंकना चाहिए। मगर तब वह थाली बजाने लगेगी।

दो साल बाद अभी फिर उस शहर में गया। वे फिर मुझे चाय के लिए ले गये। इस बार उन्होंने नहीं कहा कि सरिता ने भी आग्रह किया है। उसने नेपथ्यवाला हिस्सा नाटक से काट दिया होगा। मैं बैठक में पहुँचा। उसने पर्दे की तरफ मुँह करके मेरे आने की घोषणा नहीं की। पर जरा देर बाद ही सरिताजी ट्रे लेकर बाहर आयीं। एकाध औपचारिक बात की, फिर घड़ी देखी। बोलीं ''आप लोग चाय पियें। मेरा तो स्कूल का वक्त हो गया।'' वे चप्पल फटफटाती सीढ़ी से उतर गयीं।

श्रीयुत सरितापति बोले, ''स्कूल में नौकरी कर ली है। आजकल एक की कमाई से पूरा नहीं पडता।''

समझ गया, अर्थशास्त्र ने संस्कार को धोबी--पछाड दे दी।

हमारे जमाने में नारी को जो भी मुक्ति मिली है, क्यों मिली है? आन्दोलन से? आधुनिक दृष्टि से ?उसके व्यक्तित्व की स्वीकृति से ? नहीं, उसकी मुक्ति का कारण मँहगाई है। नारी मुक्ति के इतिहास में वह वाक्य अमर रहेगा, ''एक की कमाई से पूरा नहीं पडता।''

अर्थशास्त्र संस्कारों के सीने पर चढ़कर गला दबा रहा है। इधर एक लड़के ने लडकी को उसी की इच्छा से भगाकर 'सरकारी शादी' कर ली। लड़का योग्य, सुन्दर और अच्छी नौकरी वाला। पहले-लड़की की माँ के संस्कारों ने जोर मारा और उसने हाय-तोबा मचाया। अर्थशास्त्र से यह बरदाश्त नहीं हुआ। उसने संस्कारों को एक पटकनी दी। माँ ने सोचा वह जो पन्द्रह हजार दहेज के लिए रखे थे, साफ बचे। फिर पन्द्रह हजार में भी इतना अच्छा लडका नहीं मिलता। उन्होंने कार्ड बाँटकर दावत दे दी।

अच्छी माँ क्यों न यह इच्छा करे कि कोई अच्छा लड़का लड़की को भगाकर शादी कर ले और हमें बाद में बता दे तो हम एक भोज दे दें।

लड़ाई शास्त्रों की भी आपस में होती है। अर्थशास्त्र जब धर्मशास्त्र के ऊपर चढ़ बैठता है, तो गोरक्षा आन्दोलन के नेता पण्डित द्वारकानाथ जूतों की दूकान खोल देते है और 'कॉफ लेदर' (बछड़े का चमड़ा) के जुते बेचते हैं।गाय के बछड़े

के चमड़े के जूते को हाथ में भागवत की तरह लेकर ग्राहक से कहते हैं–यह जूता बड़ा मुलायम होता है। पहले 'कॉफ लेदर' विलायत से आता था, पर अब अपने देश में भी उतरने लगा है। अपना देश भी काफी आगे बढ़ गया है।

सड़क पर जुलूस में होते हैं तब कहते हैं –गोहत्या के कारण देश गिर गया है। दूकान पर होते हैं तब कहते हैं–बछड़े का चमड़ा उतरने के कारण देश आगे बढ़ गया है। दोनों ही बातें सही हैं। देश गिरा जरूर। पर फिर घिसटता हुआ आगे भी बढ़ा और उनके कारखाने तक आ गया। वहाँ उन्होंने देश का चमड़ा उतारकर उसके जूते बना लिये और बेचने लगे।

महात्मा गांधी को चिट्ठी पहुँचे :-

यह चिट्ठी महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी को पहुँचे। महात्माजी, मैं न संसद सदस्य हूँ, न विधायक, न मन्त्री, न नेता। इनमें से कोई कलंक मेरे ऊपर नहीं है। मुझमें कोई ऐसा राजनीतिक ऐब नहीं है कि आपकी जय बोलूँ। मुझे कोई पद भी नहीं चाहिए कि राजघाट जाऊँ। मैंने आपकी समाधि पर शपथ भी नहीं ली।

आपका भी अब भरोसा नहीं रहा। पिछले मार्च में आपकी समाधि पर मोरारजी भाई ने भी शपथ ली थी और जगजीवन बाबू ने भी। मगर बाबूजी रह गये और मोरारजी प्रधानमन्त्री हो गये। आखिर गुजराती ने गुजराती का साथ दिया!

जिन्होंने आपकी समाधि पर शपथ ली थी, उनका दस महीने में ही 'जिन्दाबाद' से 'मुरदाबाद' हो गया। वे जनता से बचने के लिए बाथरूम में

विस्तर डलवाने लगे हैं। मुझे अपनी दुर्गति नहीं करानी। मैं कभी अपकी समाधि पर शपथ नहीं लूँगा। उसमें भी आप टाँग खींच सकते है।

आपके नाम पर सड़कें है–महात्मा गांधी मार्ग, गांधी पथ। इन पर हमारे नेता चलते हैं। कौन कह सकता है कि इन्होंने आपका मार्ग छोड़ दिया। वे तो रोज महात्मा गांधी रोड़ पर चलते हैं।

इधर आपको और तरह से अमर बनाने की कोशिश भी हो रही है। पिछली दीवाली पर दिल्ली के जनसंघी शासन ने सस्ती मोमबत्ती सप्लाई करायी थी। मोमबत्ती के पैकेट पर आपका फोटो था। फोटो में आप आर. एस. एस. के ध्वज को प्रणाम कर रहे हैं। पीछे डॉक्टर हेडगेवार खडे हैं।

एक ही कमी रह गयी। आगे पूरी हो जायेगी। अगली बार आपको हाफ पैण्ट पहना दिया जायेगा और भगवा टोपी पहना दी जायेगी। आप मजे में आर. एस. एस. के स्वयंसेवक के रूप में अमर हो सकते हैं। आगे वही अमर होगा, जिसे जनसंघ करेगा।

कांग्रेसियों से आप उम्मीद मत कीजिये। यह नस्ल खत्म हो रही है। आगे गड़ाये जाने वाले काल पात्र में एक नमूना कांग्रेस का भी रखा जायेगा, जिससे आगे आनेवाले यह जान सकें कि पृथ्वी पर एक ऐसा प्राणी ऐसा भी था। गेंड़ा तो अपना अस्तित्व कायम रखे है, पर कांग्रेसी नही रख सका।

मोरारजी भाई भी आपके लिए कुछ नहीं कर सकेंगे। वे सत्यवादी हैं। इसलिए वे अब यह नहीं कहते कि आपको मारनेवाला गोडसे आर. एस. एस. का था।

यह सभी जानते हैं कि गोडसे फाँसी पर चढ़ा, तब उसके हाथ में भगवा ध्वज था और होंठों पर संघ की प्रार्थना-'नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमि।' पर यही बात बतानेवाला गांधीवादी गाइड दामोदरन नौकरी से निकाल दिया गया है। उसे आपके मोरारजी भाई ने नहीं बचाया।

मोरारजी सत्य पर अटल रहते हैं। इस समय उनके लिए सत्य है प्रधानमन्त्री बने रहना। इस सत्य की उन्हें रक्षा करनी है। इस सत्य की रक्षा के लिए जनसंघ का सहयोग जरूरी है। इसलिए वे यह झूठ नहीं कहेंगे कि गोडसे आर. एस. एस. का था। वे सत्यवादी हैं।

तो अब महात्माजी, जो कुछ उम्मीद है, बाला साहब देवरस से है। वे जो करेंगे, वही आपके लिए होगा। वैसे काम चालू हो गया है। गोडसे को भगतसिंह का दर्जा देने की कोशिश चल रही है। गोडसे ने हिन्दू राष्ट्र के विरोधी गांधी को मारा था।

गोडसे जब भागतसिंह की तरह राष्ट्रीय हीरो हो जायेगा, तब तीस जनवरी का क्या होगा? अभी तक यह 'गांधी निर्वाण दिवस' है, आगे 'गोडसे गौरव दिवस' हो जायेगा। इस दिन कोई राजघाट नहीं जायेगा। फिर भी आपको याद जरूर किया जायेगा।

जब तीस जनवरी को गोडसे की जय-जयकार होगी, तब यह तो बताना ही पडेगा कि उसने कौन-सा महान कार्म किया था। बताया जायेगा कि इस दिन उस

वीर ने गांधी को मार डाला था। तो आप गोडसे के बहाने याद किये जायेंगे। अभी तक गोडसे को आपके बहाने याद किया जाता था।

एक महान पुरुष के हाथ से मरने का कितना फायदा मिलेगा आपको? लोग पूछेंगे, ''यह गांधी कौन था?'' जवाब मिलेगा, ''वही जिसे गोडसे ने मारा था।''

एक संयोग और आपके लिए अच्छा है। 30 जनवरी 1977 को जनता पार्टी बनी थी। 30 जनवरी जनता पार्टी का जन्म-दिन है। अब बताइये, जन्म दिन पर कोई आपके लिए रोयेगा? वह तो खुशी का दिन होगा।

आगे चलकर जनता पार्टी पूरी तरह जनसंघ हो जायेगी। तब 30 जनवरी का यह महत्व होगा-इस दिन परमवीर राष्ट्र भक्त गोडसे ने गांधी को मारा। इस पुण्य के प्रताप से इसी दिन जनता पार्टी का जन्म हुआ, जिसने हिन्दू राष्ट्र की स्थापना की।

आप चिन्ता न करें, महात्माजी! हमारे मोरारजी भाई को न कभी चिन्ता होती है, न वे कभी तनाव अनुभव करते हैं। चिन्ता क्यों हो उन्हें ? किसकी चिन्ता हो ? देश की ? नहीं। उन्होंने तो ऐलान कर दिया- राम की चिड़िया, राम के खेत! खाओ री चिड़िया , भर-भर पेट! तो चिड़िया खेत खा रही हैं और मोरारजी को कोई चिन्ता, कोई तनाव नहीं है।

बाकी भी ठीक चल रहा है। आप जो लाठी छोड गये थे , उसे चरण-सिंह ने हथिया लिया है!

चौधरी साहब इस लाठी को लेकर जवाहरलाल नेहरू का पीछा कर रहे हैं। जहाँ नेहरू को पा जाते है, एक-दो हाथ दे देते हैं। जो भी नेहरू की नीतियों की वकालत करता है, उसे चौधरी आपकी लाठी से मार देते हैं।

उस दिन चन्द्रशेखर ने कहीं कह दिया कि नेहरू की उद्योगीकरण की नीति सही थी और उससे देश को बहुत फायदा हुआ है।

चरणसिंह ने सुना तो नौकर से कहा, ''अरे, लाना गांधीजी की लाठी !''

लाठी लेकर चौधरी चन्द्रशेखर को मारने निकल पड़े। बेचारे बचने के लिए थाने गये तो थानेदार ने कह दिया-पुलिस चौधरी साहब की है। वे आपको मार रहे है, तो हम नहीं बचा सकते।

आप हरिजन वगैरह की चिन्ता मर कीजिए। हर साल कोटा तय रहता है कि इस साल गांधी जयन्ती तक इतने हरिजन मरेंगे। इस साल 'कोटा' थोड़ा बढ़ा दिया गया था, क्योंकि जनता पार्टी के नेताओं ने राजघाट पर शपथ ली थी।

उनकी सरकार बन गयी। उन्हें शपथ की लाज रखनी थी। इसीलिए हरिजनों को मारने का 'कोटा' थोड़ा बढ़ा दिया गया। खुशी है कि कोटे से कुछ ज्यादा ही हरिजन मारे गये।

आप बेफिक्र रहें, आपका यश किसी-न-किसी रूप में सुरक्षित रहेगा।

आपका

एक भक्त

ठण्डा शरीफ आदमी :-

मेरा और उसका रास्ता एक है, वह जिधर से आता है; मैं उधर जाता हूँ। कई सालों से आमना-सामना हो रहा है। पहले वह चलते-चलते पूछता था, 'सब ठीक है?' मैं अगर सवाल के साथ ही जवाब न फेंक देता, तो वह आगे निकल जाता और जवाब उसकी साइकिल के पिछले पहिये से टकराकर रह जाता मैं सावधानी बरतने लगा। उसे देखते ही जवाब उछाल देता, 'सब ठीक है।' यह उसके सवाल से टकरा जाता।

फिर उसने सोचा होगा कि पूरे सवाल में बहुत वक्त लग जाता है। उसने सिर्फ एक शब्द ले लिया। वह पूछता 'ठीक?' मैं जल्दी में जवाब देता, 'ठीक।' तब तक वह आगे बढ़ गया होता।

फिर उसने सोचा कि 'ठीक' में जो दीर्घ मात्रा है, वह ज्यादा वक्त लेती है। उसने उसे ह्रस्व कर लिया। वह पूछता, 'ठिक?' मैं कहता 'ठिक।' मैं कभी उसे देख नहीं पाता, मगर कान में आवाज पड़ती, 'ठिक?' मैं फौरन बिना देखे जल्दी के ख्याल से 'ठिक' कह देता।

आगे उसने 'ठिक' को भी व्यर्थ समझा। हमारे सवाल-जवाब इतने निश्चित हो गये थे कि इशारे से काम चल सकता था। अब वह मुझे देखकर किंचित मुस्कराता है, एक हाथ खोलकर झटके से कन्धे तक ले जाता है और पंजे को जरा-सा हिलाता है। इस इशारे में 'नमस्ते' भी है और 'सब ठीक है' भी।

इसका यह मतलब नहीं है कि वह फुरती में होता है। नहीं वह धीरे-धीरे चलता है। मगर उसे फुरसत नहीं होती। समय की कमी है, ऐसा भी नहीं है। वह घर से किसी जगह जाने के लिए निकला है। उसे लगता है, वह जगह मेरे आगे-आगे चल रही है। मुझे उसे पकड़ना है, मगर आहट भी नहीं करना है। वह भाग जायेगी। उस पर नजर रखना है, इसलिए रास्ते में कही अटकना नहीं है। धुन बाँध वह चला जाता है। ओठों के पास कान लगाओ, तो 'सर-सर' सुनायी पडेगा। कुछ भक्त 'राम राम' बुदबुदाते चलते हैं, क्योंकि उसके 'सर' राम होते हैं। एकाग्रता से वह उन बातों को बुदबुदाता चलता है, जो उसे किसी से कहनी है। आसपास क्या हो रहा है, इससे उसे कोई सरोकार नहीं है। मेरा उसके लिए तत्काल कोई उपयोग नहीं है, तो वह मेरे लिए रुकेगा नहीं। सडक पर दुर्घटना हो गयी और कोई आदमी कुचला पडा है, तो वह बिना ध्यान दिये किनारे से निकल जायेगा। उसे अहसास है कि कुचला हुआ आदमी मैं नहीं हूँ। जुलूस निकल रहा है, तो उसे यह जानने की इच्छा ही नहीं होती कि किनका जुलूस है और क्यों निकला है? तो वह ध्यान नहीं देगा। न वह नाचने वाला है, न दर्शक। दो आदमियों में मार पीट हो रही है तो भी उसे मतलब नहीं। दोनों में से कोई भी वह नहीं है।

दुनिया में जो कुछ भी है, उसे उसने दो हिस्सों में बाँट लिया है- अपने मतलब का और अपने मतलब का नहीं। जिससे उसे लाभ-हानि नहीं, उसका उसके लिए कोई अर्थ नहीं। एक दिन हम लोग वियतनाम पर बनबारी की चर्चा कर रहे थे। सब

चिन्तित और उत्तेजित थे। वह किसी काम से आया था, इसलिए बैठा था। मगर वह कुछ सुन नहीं रहा था। बैठा हुआ कुछ हिसाब-सा लगा रहा था। वियतनाम की बात निकलते ही उसने सोच लिया होगा कि मेरे ऊपर तो बम गिर नहीं रहे हैं, फिर फिजूल माथा-पच्ची क्यों की जाये? एक दिन बिहार के अकाल-ग्रस्त लोगों के लिए हम पैसा इकट्ठा कर रहे थे। उससे कहा, तो उसने जवाब दिया, ''क्या मजाक करते हो! अकाल तो बिहार में पड़ा है और पैसा यहाँ इकट्ठा कर रहे हो!'' उसे मालूम था कि वह खुद बिहार में नहीं है और भूखा नहीं मर रहा है। फिर उसे मतलब कि कहाँ कोई भूखा मर रहा है! हम बात कर रहे हैं कि सीमा पर पाकिस्तानी फौजें घुसपैठ कर रही है और किसी भी क्षण युद्ध छिड़ सकता है। वह चुप बैठा है। कुछ बोलना कर्त्तव्य है। वह बोलता है, ''कल हमारे इधर सर्कुलर आया है कि जिनका बीमा नहीं हुआ है, वे जल्दी करा लें।'' उसने भारत और पाकिस्तान की फौजों के बीच अपना सर्कुलर घुसेडकर फौरन युद्ध-वन्दी करवा दी।

यों वह बोलता बहुत कम है। घण्टे भर पास बैठा रहेगा, पर उसकी उपस्थित का आभास तभी होगा, जब वह उठकर जाने लगेगा। बहुत लोग बिना आहट की जिन्दगी गुजार देते हैं। आसपास होंगे, पर उनकी आहट नहीं होगी। यह आदमी चलता है, तो पाँवों की आहट नहीं होती। साइकिल पर सवारी करता है, तो ऐसे जैसे मछली तैर रही है। बात बहुत धीमे करता है। कोई बात हँसने लायक होती है, तो वह इतने ओंठ खोल देता है कि दो-तीन दाँत दिख जायें।

ऐसे सब प्रसंग टालता है, जिनसे आहट हो। क्रोध से आहट होती है, तो वह क्रोध नहीं करता। एक दिन मैंने कहा, ''श्रीधर तुम्हारी बहुत बुराई करता है।'' उसने कहा, ''करने दो। हम तो एडजस्ट करके चलते है।'' उसके बॉस के व्यवहार से सब असन्तुष्ट थे। मगर वह कहता, ''सब ठीक है। हम तो एडजस्ट करके चलते है।''

आहट नहीं होती, पर सफलता उसे मिलती जाती है। एक के बाद एक प्राप्ति उसे होती जाती है। उसकी बात सोचता हूँ' तो मुझे बिल्ली की याद आती है। कमरे में बिल्ली घण्टों बिना आहट के दबी बैठी रहती है। उसकी उपस्थिति का अहसास तभी होता है, जब वह झपट्टा मारकर चूहें को पकड लेती है। चावल का परमिट लेने के लिए हजारों दरख्वास्तें दफ्तर में जमा हैं। लोग हफ्तों चक्कर लगाते हैं। न जाने कैसे इसकी दरख्वास्त सरककर ऊपर आ जाती है और इसे परमिट मिल जाता है। एक समिति की सदस्यता के लिए नामजदगी होती है। बड़े नामों की चर्चा हो रही है और बड़ी हलचल है। इस आदमी कोई आहट नहीं है। मगर एक दिन सुनते हैं कि यह नामजद हो गया। पुरस्कार पर पुरस्कार मिलते हैं। अच्छे से अच्छे ग्रन्थों की चर्चा हो रही है। पुरस्कारों की घोषणा होती है, तो उसमें इसका नाम होता है।

बिना आहट के वह चूहे पकड़ता जाता है और इसके बाद फिर इस तरह सिकुड़कर बैठ जाता है कि किसी को अहसास नहीं होता कि वह भी इस दुनिया में कहीं है। जब कोई नयी सफलता उसे मिलती है तब वह हाथ का इशारा करके भाग नहीं जाता। वह रुक जाता है। मैं समझ जाता हूँ कि या तो इसे मुझसे कोई काम

कराना है या किसी नयी सफलता की सूचना देना है। अगर उसके चेहरे पर जरा ज्यादा मुसकान है, तो उसने जरूर कोई चूहा पकड़ लिया है। उसकी मुसकान बहुत ठण्डी होती है। पूरा व्यक्तित्व ही बर्फ से बना है। मुझे लगता है, चारों तरफ से मुझे बर्फ घेर रही है। मैं भागना चाहता हूँ, पर वह मुझे पकड लेता है।

''क्या हालचाल हैं?'' वह पूछता है।

यह सवाल जवाब नहीं माँगता। उसे किसी के हाल से मतलब नहीं। मैं अगर उससे कह भी दूँ कि मुझे हाल में दिल का दौरा पड़ा था, तो वह कहेगा, 'अच्छा!' या कह दूँ कि मुझे नोबल पुरस्कार मिल गया है, तो भी कहेगा, 'अच्छा?' मेरी इन दोनों स्थितियों को वह सिर्फ 'अच्छा' कहकर टाल देगा। वह जानता है, न उसे दिल का दौरा पड़ा, न नोबल पुरस्कार मिला। वह तो अपनी किसी नयी उपलब्धि के बारे में बताने को रुका है। वह घर से तय करके चला होगा कि आज इन-इन आदमियों को बताना है। किसी की जिन्दगी में दिलचस्पी लेकर वह पथभ्रष्ट नहीं होता। उतने आदमियों को बात कर वह घर लौट जायेगा।

''क्या हालचाल हैं?''– कहकर वह कुछ ज्यादा मुस्करायेगा। फिर कहेगा, ''उस कमेटी में अपनी नामजदगी हो गयी। बहुत लोग कोशिश में थे।''

मैं कहूँगा' ''बड़ी खुशी हुई सुनकर। सम्मान की बात है।''

वह कहेगा' ''अपन तो इस तरह सोचते हैं कि कमेटी में दस बड़े-बड़े लोगों से मेलजोल होगा। इससे कुछ फायदा हो जायेगा।''

फायदा बताकर वह कहेगा, ''अच्छा चलूँ? और सब ठीक है न!''

अपने को भावनात्मक रूप से किसी भी व्यक्ति से बिना जोड़े सब निभाता जाता है जो उसके लिए उतना निर्जीव है जितना पत्थर, उससे रोज घर जाकर मिलेगा, अगर वह उसे को फायदा पहुँचा सकता है। ठण्डी औपचारिकता में जब वह भावना की गर्मी भरने का नाट्य करता है, तब बहुत घृणास्पद हो जाता है तब उसे सहा नहीं जा सकता।

मेरे एक मित्र से उसे कोई काम कराना था। वे एक दिन अचानक बीमार पड़ गये। इसे मालूम हुआ, तो इसने सोचा होगा कि जिस आदमी को खुश रखना है, उसकी बीमारी में रोज उससे मिलने जाना चाहिए। वह रोज शाम को मिलने जाने लगा। मैं भी शाम को वहाँ होता और मैं रोज उस आदमी का बर्ताव देखता। ऐसा लगता कि उसने बीमार के प्रति कर्त्तव्य को सूत्रों पर उतार लिया है-चिन्ता प्रकट करना, अपनी दुखद प्रतिक्रिया बताना, वर्तमान हालत पूछना और कुछ सलाह देना।

इन चारों स्थितियों में से वह रोज सफाई से गुजर जाता। कमरे में चिन्ता धारणा करके घुसता और कुछ देर उसी तरह मुँह लटकाये बैठा रहता, जैसे बीमार मरने ही वाला है।

इसके बाद बँधे बँधाये सवालों में हालचाल पूछता:

''अब बुखार कैसा है?''

''पेट का दर्द बन्द हुआ?''

''रात को नींद तो ठीक आयी थी न ?''

फिर चुप।

मेरी तरफ देखकर कहता, ''मुझे तो सक्सेना साहब ने बताया कि अचानक आपकी तबीयत खराब हो गयी। मै घबरा उठा। मैंने कहा, कल ही तो मिला था। तब तो बहुत अच्छे थे चार घण्टों में उन्हें क्या हो गया? मैंने फौरन साइकिल उठायी और बँगले पर आया। देखा, तो आप बेहोश पडे थे। शरीर जैसे आग हो गया था। मै तो देखकर खुद बहुत नर्वस हो गया।''

फिर जरा देर चुप।

इसके बाद सलाह देगा, ''आप सिगरेट पीना छोड़ दीजिये। यह बहुत नुकसान करती है। छोड नहीं सकते, तो बहुत कम कर दीजियें।''

फिर चुप बैठा रहता। थोड़ी देर बाद घडी देखकर उठता। कहता, ''अब आज्ञा दीजिये। मेरे योग्य कोई सेवा?''

रोज इतना बँधा-बँधाया रोल वह अदा कर जाता। उसे देखते ही मेरे बीमार मित्र परेशान हो जाते। वह मेरी तरफ बडी कातर दृष्टि से देखते। मैं खुद परेशान होता। मगर हम कुछ नहीं कर सकते थे। वह बेहिचक अपना रोल शुरू करता। वही मुद्रा, वही प्रश्न, वही शब्द रोज दुहराता। कोई दरवाजे के बाहर से सुनता, तो यही समझता कि इस कमरे में हर शाम को यही रिकार्ड बजाया जाता है।

अगर मेरी बीमारी में वह रोज मुझे देखने आये, तो मुझे डर है, मैं कभी अच्छा न होऊँ।

सोचता हूँ, किस साधना से आदमी ऐसा ठण्डा हो जाता है? जिन्दगी में इतनी तरह के आगें हैं , कहीं कोई गर्मी इसे महसूस क्यों नहीं होती? जिन्दगी की जटिलता को सुलझाकर इसने किस तरह सीधा और सपाट कर लिया है?

वह मेरा कुछ नहीं बिगाड़ता। मेरे प्रति उसके मन में कोई दुर्भावना नहीं है– कोई भावना नहीं है। वह किसी का कोई नुकसान नही करता। निहायत शरीफ आदमी है वह। पर उसे देखकर मैं परेशान हो जाता हूँ। लगता है, वर्फ की चट्टान मेरी तरफ लुढकती हुई आ रही है।

(स) परसाई जी के लघु नाटक, किंचित निबन्ध, टिप्पणी व संस्मरण :-

आदमी की कीमत :-

एक वैज्ञानिक ने हिसाब लगाकर बतलाया था, मनुष्य के शरीर का विश्लेषण कर, यदि भिन्न–भिन्न तत्वों को बेचा जाय तो 3.50 कीमत आवेगी। इस प्रकार एक आदमी की कीमत 3.50 हुई। हाँ, यदि स्थूलकाय व्यक्ति हुआ तो 4 रु. भी हो सकती हैं, और दुर्बल हुआ तो 3 रु. भी रह सकती है – इससे अधिक अन्तर नहीं पड़ सकता। फिर संसार में लाख रुपयों का आदमी, सौ रुपयों का आदमी और तीन कौड़ी का आदमी भिन्न–भिन्न कीमतों के आदमी कैसे हो जाते है ? कुम्हार आठ आने का घड़ा भी बनाता है और चार आने का घड़ा भी बनाता है। 'आठ आने का घड़ा बड़ा है बाबूजी, और चार आने का छोटा। आठ आने वाले पर वेलबूटे है, और नाखून की टंकार मारिए, टन–टन आवाज करता है, पक्का है'

परन्तु सृष्टिकर्ता इस प्रकार का कुम्हार तो है नहीं। बेलबूटेवाला आदमी हमने कहीं नहीं देखा। और ठोंक-बजाकर देखा जाय तो तीन कौड़ी का आदमी लाख रुपयों के आदमी से अधिक टंकार मारता है, अधिक पक्का होता है।

सेठ करोड़ीमल और किसान रामदीन के यहाँ एक ही समय एक-एक लड़का हुआ। रामदीन का लड़का स्वस्थ, बलवान, सच्चरित्र, बुद्धिमान। करोड़ीमल का लड़का दुबला-पतला, डाक्टर-हकीम, झाड़ा-फूकी और ओझा के बल पर जीने वाला, गले में ताबीज, पाँव में गण्डा। सवाल नहीं बनते तो रामदीन के लड़के से पूछता। और एक दिन कराल काल को घूस देने में असफल होकर परलोक चल दिये सेठजी का अनुगामी हुआ। बस उसी दिन करोड़ीमल का लड़का 'लाख रुपयों का आदमी' हो गया और रामदीन का लड़का 'तीन कौड़ी का आदमी' हो गया। सब भाँति योग्य होकर भी रामदीन के लडके की कीमत तीन कौड़ी और सब भाँति अयोग्य होते हुए भी करोड़ीमल के लडके की कीमत लाख रुपये। हमारे उस वैज्ञानिक के कथानुसार विश्लेषण किया जाय तो रामदीन का लडका करोड़ीमल के लडके से अधिक कीमत का निकले।

सौ रुपयों का आदमी भी देखा है। दफ्तरों की फाइलों के द्वारा चूसे हुए रक्त के अभाव में 'पाण्डुरंग' एक बेचारे बाबू साहब भी कह रहे थे, ''भैया, इज्जत अपनी भी है। अब आज दिन सौ रुपये का आदमी मैं भी हूँ। वे ही एक नवाब थोड़े ही है।'' बाबू साहेब को पहिली तारीख को 100 रुपये मिल जाते है, इसलिये आदमियत का सौदा सौ रुपयों में हुआ।

उस दिन बाजार में स्थित एक बडे आलीशान मकान को अचरज, प्रशंसा और श्रद्धा से देखते हुए दो गरीब ग्रामीण बातें कर रहे थे –

''पच्चीस हजार का तो होगा,'' एक बोला।

''पच्चीस हजार का ? तू तो निरा बुद्धू है। अरे एक लाख से कम का न होगा।'' दूसरा आदमी तनिक रोष से बोला। साथी द्वारा पच्चीस हजार मूल्यांकन उसे व्यक्तिगत रुप से अपमानजनक-सा लगा। यदि वह दो लाख कहता तो उसे प्रसन्नता होती। मनुष्य एक सीमा तक किसी के उत्कर्ष से ईर्ष्या करता है, उसके परे वह उसके लिये श्रद्धा की वस्तु बन जाता है। और मनुष्य जिसे महान मानता है उसकी महानता में तनिक भी धक्का लगना वह सहन नहीं कर सकता। यदि पच्चीस हजार कहने वाला दुबारा उतने ही कहता तो उसका साथी उसे अवश्य मार बैठता।

वे दोनों उस मूर्तिमान अन्याय को, मूर्तिमान शोषण को बड़े आनन्द और श्रद्धा से देख रहे थे जैसे आदमी अपने शरीर पर उठे हुये जहरीले फ़ोड़े को सहलाता है, उसे धीरे-धीरे खुजलाता है। बिल्कुल फोड़े ही जैसा लगा मुझे वह महल ! वह ग्रामीण जिसने अपने साथी पर पूरा प्रभाव जमा लिया था, बोला, ''यह सेठ तो गोद आया है। आज करोडों का आदमी है। यहाँ का बड़ा 'महाजन' है।'

'महाजन' शब्द से मैं चौंक पडा। धन उधार देकर समाज का शोषण करनेवाले धनपति को जिस दिन 'महाजन' कहा होगा उस दिन ही मनुष्यता की

हार हो गयी। 'महाजन' कहना मनुष्यत्व की हीनता स्वीकार करके ही तो सम्भव हुआ। धन से कोई 'जन' 'महा' कैसे हो सकता है। आज तो 'जन' की 'महानता' की नाप हम धन के पैमाने से ही करने लगे है। पुरुष पुरातन की वधू चंचला की प्रतिष्ठा स्वीकार कर ली है।

फिर सोचा, तनिक देख तो लूँ इस 'करोड़ रुपये के आदमी' को, एक 'महाजन के दर्शन से कृतार्थ ही हो लूँ। फाटक के भीतर झाँककर देखा तो तरल पदार्थ के समान 'थलथलाते' हुये शरीर वाला कृष्ण वर्ग दीर्घकाय 'सहित प्राण कज्जल गिरि-जैसा' करोड़ रुपयों की कीमतवाला सेठ थूक का फव्वारा छोड़ नौकर को डाँट रहा था। यही था करोड़ रुपयों का आदमी, 'महाजन'। मैनें सोचा, विश्लेषण किया जाय तो अधिक-से-अधिक चार रुपयों का यह निकलेगा, क्योंकि 4-6 बाल्टी तो पानी ही निकल जावेगा।

संसार के अधिकांश आदमियों की आँखों में कुछ ऐसा रोग-सा है कि उन्हें मनुष्यता की अपेक्षा सोने की परख अच्छी आती है। और 'सर्वेगुणः काञ्चन माश्रयन्ते' का सहारा लेकर कुछ रद्दी माल की कीमत भी चढ़ा देते है। सोने की चकाचौंध में आँखें चोंधियां जाती है, इसलिये स्पष्ट दिखना कठिन हो जाता है।

संसार की हाट भी बड़ी विचित्र है, इसके खरीददार भी बड़े विचित्र ! हमारे इतवार को भरनेवाले हाटों में तो मनुष्य सस्ती वस्तु की ओर आकर्षित अधिक होता है, कीमती वस्तु की ओर तो कोई देखता भी नहीं। तीन आने सेर के बैंगन के आसपास भीड़ रहती है पर चार आने सेरवाला खाली बैठा रहता है। परन्तु

संसार के हाट में कीमती मनुष्य की ओर अधिक आकर्षित होते है, सस्ते की ओर कोई देखता भी नहीं। 'लाख रुपये' के आदमी के आसपास दिन–भर भीड़ रहती है, तीन कौड़ी के आदमी की ओर कोई देखता भी नहीं है।

जीवन में तो यह विषमता। मरने के बाद 'घर तो साढे तीन हाथ, घना तो पौने चार' – 3½ का शरीर और 3½ हाथ का अन्त में स्थान ! फिर कहाँ भेदभाव रहा ? फिर ये क्यों हमने विषमता की दीवालें खड़ी कर दी ?

उसी वैज्ञानिक की सहायता से कुछ नीचे लिखा–सूत्र निकलता है –

लाख रुपये – मनुष्यता = 3½ रु., तीन कौडी + मनुष्यता = लाख रुपया।

अभी मानसिक गुलामी शेष है :--

पिछले दिनों एक ग्रामीण विवाह में उपस्थित रहने का मौका मिला। विवाह के अन्य कार्यक्रम, जिनमें दूल्हे के पैर पूजन से लेकर उसकी सात पीढी तक को गाली देना शामिल है, कोई नवीनता लिये हुये नहीं है। मैं, जो स्वतन्त्र भारत के नागरिक का दम्भ लिये गाँव का कायाकल्प देखने की आशा से गया हुआ था, एक बात देखकर विशेष रुप से क्षुब्ध हुआ। कन्या–पक्ष की स्त्रियाँ गा रही थी –

''बन्ना तो मेरा बन गया जण्टलमेन'' तथा ''बन्ना के बाल अंगरेजी, मोहे सूरत लगे प्यारी ....''

हमारी कल्पना का आदर्श दूल्हा भी अंगरेजी रंग में रंगा हुआ है – वह 'जेण्टलमेन' है – सूट-बूट, टाई, टोप पहिनता है और इसी लिबास का अंगरेजी दूल्हा हमारी ग्राम की स्त्रियों को अच्छा लगता है ! जब अंगरेजों ने हमारी सांस्कृतिक लूट मचायी तब हम भागकर अपनी संस्कृति को ग्रामों में धरोहर के रुप में रख आये थे। सोचा था, सम्भवतः लुटेरा यहाँ न पहुंच पावेगा। परन्तु आज जब हम अपनी वस्तु वापिस माँगने गये तो मालूम हुआ – अमानत में खयानत हो गयी। और खयानत भी उसे कैसे कहें ? खयानत में स्वेच्छा तो रहती ही है और खयानत करनेवाला जानता है वह क्या कर रहा है, पर यह तो अनजाने ही चली गयी।

आज स्वतन्त्रा की वर्षगाँठ पर हिसाब लगाकर देखा तो मालूम हुआ कि अठन्नी-भर स्वतन्त्रता अभी बाकी है। शरीर स्वतन्त्र है, मस्तिष्क अभी भी परतन्त्र है। दो सौ वर्षो से साम्राज्यवादी अंग्रेजों ने हम पर जो विदेशी रंग चढाया है, वह अभी नहीं धुल पाया। आधी गुलामी हमने बलात् फेंक दी, आधी गुलामी अभी भी हम स्वेच्छा से गले में डाले हुए है। अंगरेजियत का मोह हमसे नहीं छूट रहा है, भारतीयता हमारे आचारों में नहीं आ रही है।

यह कॉलेज का विद्यार्थी अभी भी धोती-कुरता पहिननेवाले बाप को पागल समझता है, और अभी भी यदि वह पिता 'होस्टल' में पहुँच जावे तो लड़का सहपाठियों से यही कहेगा, 'यह हमारा नौकर है।' पुत्र अभी भी पिता को अंगरेजी में पत्र लिखता है और 'पूज्य पिताजी' की अपेक्षा 'डियर फादर' में अधिक सम्मान तथा भक्ति देखता है।

ये जो भारतीय फिल्म रोज बन रही है इनमें सब काम अंगरेजी में ही हो रहा है। पात्रों के नाम, विशेष सूचना, विज्ञापन सब अंगरेजी भाषा है। और इनका 'हीरो' 15 अगस्त के बाद भी वही सूट-बूट-टाईवाला है। कोई इनसे पूछे कि क्या कोई अंगरेज सात समुद्र पर से आकर हिन्दी सिनेमा में बैठता है ? अधिकांश दर्शक अंगरेजी नहीं समझते और उन्ही के पैसों से सिनेमावालों दाल-रोटी, मक्खन, बोतल, स्नो-पावडर इत्यादि मिलते है। फिर उन्हीं के साथ यह नमकहरामी क्यों ? ये सब मानसिक गुलामी की अवधि को बढ़ा रहे है। कुछ निर्माताओं ने अपना रवैया बदला है और वह स्तुत्य है।

हमारे सेठ, साहूकारों, दुकानदारों से अंग्रेजी का मोह नहीं छूटता। वह सेठ जिसे अंग्रेजी के नाम पर वर्णमाला भी मुश्किल से आती है, अपने विज्ञापन अंग्रेजी में लिखवाता है। हिन्दुस्तान के बाजार में अंगरेजी के विज्ञापन देखकर शर्म आती है। अंगरेजी राज्य गया, ऐसा नहीं लगता। अंगरेजी ज्ञान के अभाव में कुछ विज्ञापन वड़े अशुद्ध एवं हास्यास्पद हो जाते है। अपने अज्ञान के डंके की चोट इस प्रकार ऐलान करने में भी गौरव ही अनुभव किया जाता है।

वस्त्रों में भी भारतीयता नहीं आ रही है। यह माना कि सूटों से भरी पेटी को गंगा में फूल-बताशे की तरह नहीं बहा सकते, विशेषकर वस्त्राभाव के इस काल में। फिर भी अभी तक एक राष्ट्रीय पोशाक को प्रोत्साहन तो मिलना चाहिये

था। सूट के उपर कई साहबों ने भारतीयता के नाम पर टोपी लगाना प्रारम्भ कर दिया है, परन्तु वह सिर पर लगी होने पर भी मानसिक स्वतन्त्रता से बढ़कर मानसिक गुलामी की ही द्योतक है।

सैंकड़ों वर्षो से 'पिने का पानि' लिखकर रेलवे जो हिन्दी की सेवा कर रही है उसे चाहे हम भूल भी जावें परन्तु अंग्रेजी कें प्रति रेलवे के मोह को हम भूल नहीं सकते। मैं अभी हाल में एक गाँव गया था। सड़क पर एक पटिया खम्बे में चिपका हुआ दिखा जिस पर लिखा था – To Railway Station । इस संकेत को पडकर स्टेशन पहुँचे सकनेवाला व्यक्ति उस गाँव में एक भी न होगा। फिर वह तख्ता वहाँ क्यों लगा है ? सम्भवतः इसलिये कि यदि कोई गोरा साहब उधर से निकल पड़े तो स्टेशन पहुँच जावे। उसे स्टेशन के सारे टिकट अंग्रेजी से अनभिज्ञ ग्रामीण ही खरीदते है जिससे हर साल रेलवे अपना सरप्लस बजट निकाल देती है। इन्ही लोगों के साथ यह बेईमानी क्यों की जाती है ? क्यों नहीं इश्तिहार हिन्दी में लिखवाये जाते ? क्या अभी भी अंगरेज रोकते है ?

अंग्रेजी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने की धुन में फकीरी धारण करने वाले लोगों के गुलाम विचारों पर तरस आता हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है कि गुलामी के कंटीले पौद्ये को उखाड़ फेंकने के पश्चात् भी हममें से कुछ उसकी एक डाल गाड़कर उसे पानी दे रहे है। यहाँ फूल फलने ही नहीं देना चाहते। उनको तो

राष्ट्रभाषा हिन्दी से बैर – कभी हिन्दुस्तानी का अड़ंगा खडा करेंगें, अभी अंगरेजी का बखेड़ा उत्पन्न कर देगें। अंगरेजी को राष्ट्रभाषा बनाने की माँग स्वयम् एक लांछन है। और फिर अंगरेजियत ही पसन्द थी तो काहे को स्वराज्य के लिये लड़े, खून वहाया, बरबादी उठायी ? यदि इन्हीं की बात स्वीकार कर ली जावे तो स्थिति इस प्रकार होगी : हमारे यहाँ 100 में से जो 10 पढे–लिखे आदमी है उनमें से 8 को अपढ ही मानना होगा, क्योंकि 100 में से 2 आदमी ही अंगरेजी पढ़े –लिखे है। दो सौ वर्षो में केवल 100 में से 2 व्यक्ति ही अंगरेजी पढ पाये तो इस हिसाब से शत–प्रतिशत साक्षरता के लिये 10000 वर्ष लगेगें। फिर माता अपने बच्चे को सिखाये कि बेटा, यह 'पानी, नहीं 'वाटर' है। और यदि हिन्दुस्तानी बच्चा यह पूछ बैठे कि माँ, फिर पानी कैसा होता है ? बेचारी माँ डाक्टर हरीसिंह गौर से पूछने जाये कि बच्चे को क्या जबाव दिया जाय।

अंगरेजी की छोड़ी हुई आदतों का नाम गिनाना कठिन है। एक 'बेड टी' नाम की चाय प्रचलित कर गये है, जिसका माहात्म्य प्रातःकाल बिना मुँह धोयें विछौने पर पीने का है। ठण्डे देश विलायत में बिना एक प्याला गरम चाय पिये उठना कठिन हो, पर हिन्दुस्तान सरीखे उष्ण देश में रात–भर का इकट्ठा मैला चाय के साथ पेट में वापस भेजने की क्या आवश्यकता है ? पके घड़ों पर चाहे मिट्टी न चढ़े, पर नवीन पीढ़ी तो ऐसी गन्दी और हानिकारक आदतें न सीखे।

यह मानसिकता गुलामी हमारी प्रगति में बाधक है। हम स्वतन्त्रता का अनुभव करने के लिये प्रयास-सा करते हैं। हमारी संस्कृति, सभ्यता, भाषा का पुनरुद्धार ही हम नहीं करना चाहें तो फिर किसलिये खून के बदले स्वतन्त्रता खरीदी ?

यह मानसिक गुलामी जानी ही चाहिये।

पर, राजा भूखा था :-

स्वतन्त्रता-दिवस के दिन शहर का काया-पलट हो जाय तो आश्चर्य क्या ? यह महान् राष्ट्रीय पर्व प्रतिदिन तो आता नहीं हैं! रंगीन झण्डियाँ, वन्दनवार, फूल, रंग-बिरंगे बल्ब - सबने लक्ष्मी की अलक्ष्य प्रेरणा से वातावरण में सौन्दर्य ला दिया था। पर इस सबमें मुझे वह सत्यता नहीं मिली जिसे देखने मैं निकला था। एक प्रकार का कोरापन था : हृदय का अभाव था। सम्भवतः इसलिये कि वे 'अनेक' जो सड़क पर से कौतूहलपूर्ण ने नेत्रों से देखते हुए चले जा रहे थे, उस 'एक' से जो दुकान पर बैठा हुआ गर्वदृष्टि से देख रहा था - इतने भिन्न थे।

एक विशाल चाँदी-सोने की दुकान विशेष आकर्षण लिये थी। काँच के 'शो-केश' में चाँदी-सोने, जवाहरात के बीच में गाँधी और नेताजी के चित्र सजे हुए थे। उन्होंने सोने की श्रृंखला को तोड़ अपना स्थान दरिद्रों में बनाया उनको ही सोने के पिंजड़े में बन्द कर दिया ! कृतघ्न देश ! तूने राष्ट्रपिता का उपयोग आखिर विज्ञापन के लिए किया ! तूने 'गाँधी भण्डार' नाम से मिठाई की दुकान खोली, तूने

'गाँधी स्टोर्स' खोल दिया, तूने 'गाँधी वस्त्रागार' खोल दिया जहाँ तू सत्य के देवता के नाम पर एक गज का पन्द्रह गिरह नापता है !

एक जगह और देखा ! दुकान के सामने की भूमि बाँसों के द्वार घेर रखी थी जिससे दर्शक बहुमूल्य सजावट को समीप से न देख सकें। वहाँ केवल चुने हुये सेठ-साहूकार, ऊँचे अफसरों की पहुँच थी। बाहर भूखा भिखारी पेट दिखाकर एक पैसा माँग रहा था, भीतर धनी सेठ रसगुल्ले खाने के आग्रह पर 'नहीं--नहीं' कह रहा था। पर वह घेरा ! एकाधिपत्य का लोभ सरलता से संवरणशील नहीं है। दूसरों का दृष्टि-अधिकार छीनकर संचय करना भी कितनी बड़ी निर्लज्जता है। क्या बेचारा दरिद्र पर--वैभव को देखकर प्रसन्न होने का अधिकारी भी नहीं। हमारों वर्ष पूर्व हमारे ही पूर्वज उपनिषदों में कह गये है, 'मा गृधः कस्यस्वित् धनम्।' कितना अन्तर है - तब और अब। धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र तो बन्द पेटी से तब निकाले जाते है जब धन के स्वार्थों का समर्थन करना होता है।

गाँधी जी का मूल्य भी रुपये-आने-पाई में होने लगा। 1001 रुपये गाँधी-स्मारक कोष में देकर 10001 रुपये कमाने की इच्छा कौन नहीं रखता ? और 10 रुपये देने वाले लखपति का नाम अखबार में छप जाता है, पर 10 रुपये देने वाले उस बेचारे चपरासी का नाम कोई नहीं जानता जो एक-तिहाई वेतन देकर 10 दिन भूखा रहेगा। 'सबै सहायक सबल के।'

तो स्वतन्त्रता की खुशी में भरे पेट को और भरकर अजीर्ण उत्पन्न करने की अपेक्षा यह अच्छा होता कि उस मुँह में मिठाई पड जाती जिसने उसे कभी नहीं चखा। एक दिन के लिये गरीबों के मुहल्ले सज जाते, एक दिन के लिये उनके अन्धकार में ही प्रकाश हो जाता, एक दिन वे ही स्वतन्त्रता का अनुभव कर लेते। इन्हीं के लिये तो गाँधीजी जिये और मरे। पर मैं कह तो चुका हूँ कि गाँधी के नाम की दुकान खोलकर गाँधीजी के ही दरिद्रनारायण को लूटने का उपक्रम देशप्रेम का रुप धारण कर रहा है। गाँधी-गुण-गान के नाम पर दुकान पर सिनेमा की बदनाम-शुदा रागों पर पूज्य गाँधीजी के नाम के गाने माइक्रोफोन पर बजते ही है।

यदि कोई पूछे कि स्वराज्य किसका ? तो हम सब कहेगें - किसान का, मजदूर का, ग्रामीण का। परन्तु क्या वास्तव में वह जानता है कि उसे राज्य मिल गया है, वह राजा हो गया है ? उसकी राजनीति, साहित्य, संस्कृति, कला - पेट के बाहर कहीं भी नहीं है। स्वतन्त्रता दिवस को उसके पास दीप है तो तेल कहाँ से लावे ? फिर भी वह माँ स्वतन्त्रता का स्वागत करता है। भूख की ज्वाला उसके पेट में निरन्तर जलती है, अन्याय, शोषण की लपटें उसके आसपास उठ ही रही है - और इनके बीच वह स्वयं बत्ती बनकर जल रहा है। वह क्षुद्र टिमटिमाता हुआ मिट्टी का दीप क्या जलावे ! राजा की यह तपस्या धन्य है ! प्राचीन आर्य नरेशों की परम्परा के अनुसार यह नवीन राजा भी कुछ तपोबल संचय नहीं कर रहा है।

तो राजा ने भूखे पेट स्वतन्त्रता की वर्षगाँठ मनायी। राजकुमार और राजकुमारी अस्थियों का नंगा ढाँचा समेटे रानी से 'रोटी' की पुकार कर रहे थे। राजमहल में फूटा लोटा, एक मिट्टी का वर्तन – बस और कुछ नहीं था।

झोंपडी का अन्धकार महल के प्रकाश के मुख पर कालिख पोतने आ रहा था।

15 अगस्त को राजा भूखा था !

लक्ष्मी की विजय :-

आकाश-मार्ग से विश्व का भ्रमण कर भगवान् विष्णु, लक्ष्मी सहित गरुड की पीठ से उतरे तो लक्ष्मी खिन्न भाव से पति से बोली, ''नाथ ! सारा संसार आपकी पूजा करता है ! कितने मन्दिर बने हैं जहाँ आठों प्रहर भक्त लोग आपका गुणगान करते रहते हैं। कितना सम्मान प्राप्त है आपको। मैं आपकी स्त्री हूँ, पर मुझे कोई पूछता भी नहीं, मेरा कोई संसार में नाम भी नहीं लेता।''

बात यह थी कि उस समय तक संसार में साहब को प्रसन्न करने के लिये मेमसाहब की चापलूसी करने की प्रथा का आरम्भ नहीं हुआ था और मेमसाहब को भेंट देना, उनके हाथ से इनाम बँटवाना, उद्घाटन करवाना इत्यादि 'सत्य व्यवहार' भी मृत्युलोक में नहीं होते थे।

विष्णु ने पत्नी के अन्तर की स्पर्धा को लक्ष्य करके कहा, ''प्रिये ! यह तुम क्या कहती हो ? तुम मेरी अर्द्धांगिनी हो इसलिये मेरा आधा सम्मान तुम्हें सहज ही प्राप्त हो जाता है।''

दो दिन और दो रात हो गये। इस बीच कई बार ब्राह्मण धास डालने चला पर स्त्री ने रोक रखा। पत्नी की आज्ञा भंग कर दे ऐसा वीर नर-पुंगव उस स्वर्णयुग में भी इस विशाल आर्यावर्त में मिलना कठिन था।

उन दिनों 'पाँच बुद्धिमानों' को एक दल पृथ्वी पर पर्यटन करता था और लोगों के झगड़ों का निपटारा करता था। इन बुद्धिमानों की घ्राणेन्द्रिय इतनी तेज थी कि इन्हें झगड़े की गन्ध आ जाती थी और वे वहाँ तुरन्त पहुँच जाते थे। विप्र-वैश्य-विग्रह की गन्ध पा ये 'पाँच बुद्धिमान' वहाँ तुरन्त आ पहुँचे।

अब कुछ अश्रद्धालु लोग जो हर एक शास्त्र, पुराण, कथा में अविश्वास करते है और पूछ बैठते है कि ''मसक समान रुप कपिधरी'' में जो यह कहा है गोस्वामी जी ने, कि हनुमान जी जब मच्छड बन गये, तो राम की दी हुई अँगूठी कहाँ रखी थी – कुछ शंका करेंगे कि ये पाँच बुद्धिमान किस वाहन पर तुरन्त पहुँच जाते थे। तो हमारा उत्तर यह है कि किसी आँख बन्द कर अक्षर-अक्षर करके दिन में एक चौराई पढ़ने-वाले भक्त से ही पूछ लो कि राम लंका से अयोध्या कैसे आये। अब तो यह भी सिद्ध हो गया है कि दधीचि एक बड़े वैज्ञानिक थे और उनके पास 'एटम बम' का एक भारी कारखाना भी था – और जिस अस्त्र से असुर मारे गये वह अस्थि नहीं 'एटम बम' था। खैर !

ये पाँचों बुद्धिमान यूनानियों की न्याय की देवी के समान आँखों पर पट्टी बाँधे रहते थे, तथा एक-दूसरे की बात नहीं सुनते थे। चौरस्ते पर वर्णित और विप्र अपना-अपना मामला लेकर इनके पास आये।

पाँचों में से प्रथम कट्टर आदर्शवादी, जो निरन्तर आकाश की ओर सिर उठाये रहता था, बोला -

''गाय के दूध के अधिकारी न तो तुम स्वर्णगुप्त वैश्य और न तुम हो ब्राह्मण देवदत्त। इस पर अधिकार उस बछड़े का है। ईश्वर ने माता के स्तनों में दुग्ध स्त्रवित करने का गुण इसलिये दिया है कि उससे शिशु का पालन हो। दुष्ट मनुष्य के लूटने के लिये वह नहीं है।''

कट्टर यथार्थवादी, जो पृथ्वी की ओर ही सिर झुकाये रहता था, बोला -

''नहीं-नहीं - असल में झगड़ा गाय का है। वहुत सरल मामला है। गाय के दो हिस्से करके एक वैश्य को और एक ब्राह्मण को दे दो।''

ब्राह्मण ने चौंककर कान पर हाथ रखे - शिव-शिव ! गौ-हत्या का पाप ! घोर कुम्भीपाक नर्क जाना पडेगा। वैश्य भी सहमा !

तीसरा बुद्धिमान बोला, ''नहीं-नहीं, यह वैश्य गरीब विप्र का शोषण करता है। श्रम बेचारा ब्राह्मण करें और उसका फल यह वैश्य भोगे। समाज में अनर्जित धन किसी को नहीं मिलेगा। सब दूध ब्राह्मण को मिलना चाहिये। इतना कह उसने अपनी लाल टोपी जरा सम्हालकर सिर पर जमायी। चौथा कुछ शान्त

था। वह बोला, ''भाई, उस दूध पर अधिकार विप्र देवता का है और न वैश्य का। गाय का राष्ट्रीयकरण कर दो और दूध का उचित विभाजन कर दिया जाय।'' इतना कह उसने भी अपनी आधी सफेद लाल टोपी सम्हाली।

पीली पगड़ी पहिने हुये पाँचवां बुद्धिमान बोला, ''या गाय में बापरो बाम्हन को काई है। पैसो लग्यों वाणिया को – और दूध खाय यो बाम्हन। सब दूध वाणिया को है। बाम्हन कूँ गोबर तो मिल जाय है।''

मामला कुछ सुलझा नहीं। चख-चख प्रारम्भ हो गयी। बुद्धिमान लोग आपस में गाली-गलौंच करने लगे। प्रत्येक कहता था, मेरा सिद्धान्त ठीक है। वैश्य, ब्राह्मण और गाय बेचारी – सब यह नाट्य देख रहे हैं – अभी तक।

जनता की कष्ट-कथाएँ :-

हमारा नेता जवाहर आज लन्दन में है। हवाई जहाज का इंजन उसे खींचकर परदेश ले गया। सुना तो होगा आपने कि वहाँ राष्ट्रसंघ के बड़े-बड़े महारथी जुड़ेगें। वो अफ्रीका का प्राइम मिनिस्टर मलन भी आवेगा जिसने रंगभेद की घृणा का यमदूतत्व अपने माथे स्वीकार किया है। उसके आते ही जवाहरलाल की लम्बी नाक लाल हो जावेगी, हो जानी चाहिये। जब भाषण शुरु होगें तो कैनेडा के प्रतिनिधि को छींक आ जायेगी, आ जानी चाहिये। और तब यह भ्रम फलेगा, फैल जाना चाहिये कि यह आयरलैण्ड के उन बमों का धड़ाका तो नहीं है

कि जिन्होनें उसे इंग्लैण्ड से पूर्णतः सम्बन्ध-विच्छेद करने की प्रेरणा दी। इसी वक्त चर्चा उठेगी, उठ जानी चाहिये कि वर्मा भी ब्रिटिश राज्य से अपना सम्बन्ध तोड चुका है। इस अवसर पर जवाहरलाल की नाक तनिक फूलेगी, फूल जानी चाहिये। और इसी समय पाकिस्तानी प्रतिनिधि जफरुल्ला खाँ की तकरीर सुनायी पड़ेगी कि पाकिस्तान और भारत की भलाई इसी में है कि वे ब्रिटिश राज्य से अपना सम्बन्ध बनायें रखें। इस वक्त जवाहरलाल की भौंह कुछ तनेगी, तन जानी चाहिये। वे सोचेंगे कि भारत ? और कहेगें कि बड़ी उलझन की बात है कि जो सुलझती नहीं है, गो कि उसे सुलझना चाहिये मगर उलझती ही जा रही है कि हमारे बुजुर्गो ने यह कहावत कैसे बनायी कि साँप मरे न लाठी टूटे। वाक्य में स्थिति 'न' की स्थिति पर वे झल्ला उठेगें, झल्ला पड़ना चाहिये और तब उन्हें लगेगा, लगना चाहिये, कि ये हवाई जहाज का इंजन उन्हें कहाँ से ला रहा है -

पड़े गुनगुनाते थे लाला निरंजन

न आँखों में अंजन,

न दाँतों में मंजन

छूटे हमसे अपने

वो अगले तरीके

कहाँ खींच ले जायगा हमको इंजन ?

आपने सुना कि अटलाण्टिक गुटबन्दियों ने रूस का मुकाबिला करने के लिये अपनी मिलिटरी की मोर्चाबन्दी की योजना प्रकाशित की है। कहते है कि

सामना किया जायगा इटली, हालैण्ड और फरान्सीसी भूमि से गुजरती हुई एक कल्पित रेखा पर – फिर यदि पलायन का मौका आ गया तो तय किया गया है कि असली मोर्चा उत्तरी अफ्रीकी में लिया जायगा। इसी मैदान में वारे–न्यारे होगें।

आप कहेगें कि लड़ाई तो आ ही गयी। जब जुझाऊ बाजे ही बजने लगे तो अब कसर ही क्या रह गयी ! परन्तु कभी ये भी सुना है आपने कि मोर्चेबन्दी की योजना पहिले ही से छापकर बाँट दी जावे। जी नहीं। तो फिर आप समझें कि ये अमेरिका–रुसी सेठ के डालरों को ठगने का तरीका है। लैण्ड–लीज पर अस्त्र–शस्त्र और सेना सब्जीकरण के लिये अन्य उपकरण खरीदे जायेगें। और सेठ सोचता है कि चलो, इसी तरह सारे राष्ट्र हमारे कर्जदार होगें। हमारा प्रभाव फैलेगा।

और अमेरिका भी कच्ची गोलियाँ नहीं खेलता। उसने भी किताब छपाकर घोषणा कर दी है कि लड़ाई के शुरु में ही एटम बम का उपयोग किया जायगा रुस पर। चलने दो यारो, हम तो गाँधीजी के अनुयायी है सो अहिंसा के शस्त्र, तटस्थता की तोप और वाणी की बन्दूकों से सभी को परास्त करेंगे, करना ही चाहिये, और वैसे अपने जवाहरलाल ने कहा कि पाँच बरस लड़ाई नहीं होती, सो बैठे नर्मदा तट पर भाँग घोटो।

कौन कहता है कि हम–तुम में लड़ाई होगी

किसी दुश्मन ने खबर यूँ ही उड़ायी होगी।

भीगते बच्चे और सत्ता का मद :-

सिद्धान्तहीन नेता नामधारी चापलूसों को गत 16 तारीख को ऐसा लगा कि नगर में आये हुये मन्त्रीजी को जो अनेक सलामियाँ उन्होनें दिलायी है, वे कुछ कम पडती है। इसलिये छोटे-छोटे निर्बोध बालक-बालिकाओं को इकट्ठा कर एक सलामी और दिलायी जाय। बस अफसरों से बात हो गयी - और ये अफसर ऐसे जो ढुलकने में मुरादाबादी लोटे को मात करें, जो पद के लिये सफेद टोपी वालों का सिजदा करें। जो मन्त्री की गुड बुक्स में आने के लिये बच्चों के गलों पर छुरी फेर दें। और बात हो गयी कुछ हेडमास्टरों से और ये हेडमास्टर ऐसे जिनमें अपना कोई सिद्धान्त नहीं, जो अफसर की खुशी के लिये दिन को रात कह दें, जिन्होनें 'यस सर' के अलावा और बोली ही नहीं सीखी। कुछ ऐसे जिनके मन में खामखाह नेता की पूँछ बनने की ओछी हवस, जो इस बात को लालायित कि हम मन्त्री से कह सकें कि 'हे प्रभु, ये हम ही है जिन्होनें आपको यह सलामी दिलायी है। खूब पहचान लीजिये। भूलियेगा नहीं।' और हमारा यह समाज - जैसे भेड़ों का झुण्ड। एक ने कहा, ''सलामी होनी चाहिये'' और सबने स्वर मिलाया - '' होगी। होगी।''

इधर कांग्रेसी भैयों ने शुक्लजी से और माननीय मिश्रजी से समय भी तय नहीं किया, स्वीकृति भी नहीं ली और घोषणा कर दी - मन्त्री जी राष्ट्रीय ध्वज फहरायेगें - भाषण देगें।

अफसरों का हुक्म ! मिनिस्टर का नाम। बेचारे शिक्षक-शिक्षिकाएँ 6 साल से लेकर ऊपर उम्र तक के बालक-बालिकाओं को एक बजे दिन से लाकर मूसलाधार पानी में खड़ा करने लगे - प्रान्तीय शिक्षण महाविद्यालय के मैदान पर।

छोटे-छोटे मासूम बच्चे-बच्चियाँ नगर के कोने-कोने से पैदल आये, ग्राउण्ड पर दो-तीन घण्टे खड़े रहे। वस्त्रों से पानी टपकता था। और यह हमारा देश ऐसा अभागा कि यहाँ एक के सिवा दूसरी जोड़ी कपड़ों की नहीं। शिक्षिकाएँ, किन्हीं-किन्हीं की गोद में 5-6 माह के बच्चे। हाय रे पेट !

ऊपर से पानी मूसलाधार। बच्चे भीग रहे थे - मास्टर की भृकुटि के नीचे तिल-भर न हट सकते थे। 'अनुशासन' और 'शो' के नाम पर छाते लगाने की मनाही, भागने की मनाही।

एक बार जब कुछ लड़कियाँ छाया में भागने लगीं तो एक स्वयम्भू आयोजक जो अकारण ही उत्साह बता रहे थे, फौरन जोश में बोलते हैं - ''आप लोग राष्ट्र के लिये इतना-सा कष्ट नहीं उठा सकतीं ! जब देश के लिये प्राण देने का मौका आयेगा तब ...... ?''

फिरे दिमागवालों से कोई पूछता कि यहाँ प्राण देने का कौन-सा मौका था ? मन्त्री की सलामी में कौन-सा राष्ट्रहित निहित था ?

इस नाटक का अन्तिम लज्जाजनक दृश्य - तीन घण्टे तक दस हजार बच्चे जब भीग चुके तक घोषणा होती है कि मन्त्रीजी नहीं पधारेगें।

झण्डोत्तोलन - राष्ट्रध्वज नहीं, कांग्रेस पार्टी का ध्वज - श्री हरिहर व्यास ने किया। पार्टीध्वज को राष्ट्रध्वज कहकर सलामी दिलाना तानाशाही की चरम सीमा है। सरकारी मैदान में पार्टीध्वज। कल कोई और पार्टी भी वहाँ लड़के इकट्ठे करके ध्वज फहराना चाहेगी। देखें सरकार का रुख इस वक्त।

निराश ठिठुरते हुए बच्चे घर चले। हमने देखा है - उनके मुख पर की निराशा करुणा, खीझ को।

कैसा निष्ठुर खेल और मिथ्या स्वाभिमान और हठ। माना कि कांग्रेस लोगों ने मन्त्रीजी से स्वीकृति नहीं थी, पर क्या इन बच्चों का मन रखने के लिये वे पाँच मिनट के लिये 'मरकुरी' कार में वहाँ तक नहीं पहुँच सकते थे ?

कितने बच्चे बीमार हुए, कौन जानता है ? हजारों माताओं और पिताओं के हृदयों को कहीं कोई देश पाता ?

वकीलों का जुलूस एकाध बार निकालें तो हम भी देखें। डाक्टरों को इकट्ठा करके सलामी दिलवा लें - हम सराहना करें। नगर के प्रोफेसरों का जुलूस निकालें - हम मानें। सेठ-साहूकारों को लाइन बाँधकर 'सेल्यूट' लगवा दें तो हम समझें, अफसरों का इस तरह प्रदर्शन हो, कुछ प्रभाव भी पड़े पर हर बार सीधे, निर्बोध, निर्दोष बेचारे बच्चे ही मिल जाते है।

कैसे है वे शिक्षा–संस्थाओं के अधिकारी जो बिना विरोध के अपने बच्चों को इन 'टाम डिक हैरी' जापानी नेताओं को सौंप देते है ?

इस शर्मनाक काम के लिये जिम्मेदार 'हाफ लीडर' लोग जबाव दें – क्यों इन बच्चों के प्राणों से उन्होनें खेला ? क्यों भविष्य के नागरिकों को एक ही वार में छल, कपट, धोखा, अविश्वास सिखाया !

आपका भाग्य खुल जायगा :–

अगर आप जिन्दगी से निराश हो गये है तो हमारे आश्रम में मन्त्री से सिद्ध की गयी सर्वफलदायिनी चमत्कारी कांग्रेसी टोपी लगाइए, आपकी सब मनोकामनाएँ पूरी होंगी।

इस टोपी को विधिपूर्वक पहिननें से जिसे आप चाहते है, वह, चाहे कितना ही कठोर दिल का क्यों न हो, फौरन चला आयेगा। आपका नालायक बेटा उँची नौकरी पर लग जायगा, आपको हर चीज पर परमिट घर बैठे मिल जायगा, आपका चपरासी भतीजा फौरन साहब बन जायगा, जहाँ से आपको एक पैसे का नमक उधार नहीं मिलता था, वहाँ से हजारों का माल मिल जायेगा, इसके जादू से आप कालाबाजार करके भी बेदाग बचे रहेंगे, आपका बंगला बन जायगा, कार आ जायगी। बड़े–बड़े सेठ–साहूकारों में आपकी इज्जत होगी।

विधि – हमारे कारखाने की बनी हुई बगुले के रंग की खादी टोपी लेकर इतवार–बुधवार के दिन गुग्गल–लोभान की धूनी देकर इसको सिर पर धारण करें, फिर किसी मिनिस्टर की सात परिक्रमा करके कम–से–कम तीन बड़े कांग्रेसियों को ब्रह्मभोज करावें। तदोपरान्त नितप्रति नहा–धोकर हाथ में मिठाई का दोना लेकर प्रान्ताध्यक्ष अथवा जिलाध्यक्ष के बबुअन को देने जावें। रात्रि को टोपी को निकालकर तकिया के नीचे धरकर सोवें, जिससे नोंक बनी रहे। सांझ–सवेरे सन्ध्या करें जिसमें मन्त्रिन की स्तुति करें। हर तीसरे महीने श्री द्वारकाधाम (राजधानी) की तीर्थ–यात्रा करें तथा सब मन्त्री देवन को भेंट चढ़ावें और आशीर्वाद लेवें। मान–पत्र और थैली भी देवें।

यह टोपी सब जगह हमारे एजेन्टों के पास मिलती है।

....

अध्याय - तृतीय

अध्याय-तृतीय

(1) हरिशंकर परसाई का कल्पना संसार :-

आज हमारे समाज में जीवन का रुप पहले दो दशक जैसा ही है। गाँवों की स्थिति आज भी बदतर होती हा रही है। इसका प्रमुख कारण रुढ़िवादिता के साथ-साथ आर्थिक, धार्मिक, नैतिक व परंपरागत प्रभाव है, हमारा मानव आज भी जीवन की परंपराओं में जकड़ा हुआ है। इसी कारण से मनुष्य सदैव अपनी आकांक्षाओं को कभी पूरा नहीं कर पाया है।

आध्यात्मिकता और आधुनिकता के बीच संघर्ष ने निम्न मध्य वर्ग को अनेक अन्तर्विरोध एवं विडंबनाओं का शिकार बना दिया है। परसाई जी का यही मानना था कि मनुष्य हमेशा ही गतिशील रहने का प्रयत्न करना है परन्तु उसे उस कार्य में इतनी रुचि नहीं होती जिसके लिये वह प्रयत्न कर रहा होता है। सामाजिक अर्थव्यवस्था के साथ-साथ आर्थिक बोध को भी परसाई जी ने अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। परसाई जी ने सामान्य परिवारों तथा दीन-हीन गरीबी का भी चित्रण अपनी कथाओं में किया है। ''तट की खोज'' में शिक्षित मध्यमवर्गीय समाज के बनते, बिगड़ते आदर्शो का स्वरुप प्रस्तुत किया गया है। इसमें नये और पुराने संस्कारों का द्वंद है जहाँ इतनी उन्नति कर लेने पर भी समाज नारी में सति-सावित्री वाला रुप ही देखना चाहता है। ''रानी नागफनी की कहानी'' में सामंतवादी पूँजीवादी सत्ता के बेईमान मंसूबों को उजागर करती है। परसाई जी ने समाज में

व्याप्त कुरीतियों और अराजकता को स्पष्ट किया है। परसाई के व्यंग्य लेखक की भाषा सरल और ठीक निशाने पर चोट करने वाली भाषा है। उनकी भाषा आभिजात्य संस्कारों से परे सर्वथा जानी-पहचानी भाषा है।

एक प्रतिवद्ध व्यंग्यकार की भाँति साहित्य परसाई जी का भी लक्ष्य नही है, माध्यम भर है। लक्ष्य है मानवीय मूल्य। समकालीन यथार्थ से उनका रिश्ता अटूट है। वे अपने साहित्य में तेज-शोर प्रहारक होकर जीवन की कमजोरियों का निदान ढूढते है। उनका मनना है कि मानव मात्र की मुक्ति की लडाई अकेले नहीं लडी जा सकती और इसके लिये पूर्ण समूह तथा सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता है। इनकी कहानियों में बहुरुपात्मक तथ्य है और उसके पात्रों में भी समकालीनता है। परसाई जी वर्ग अनुकूल भाषा में ही बात करते है।

परसाई जी की रचनाओं में विचारों का संप्रेषण अत्यंत तीव्र एवं स्वाभाविक है। परसाई जी ने विचारों को जनता पर थोपने या लादने की कोशिश नहीं की है। बल्कि जन-सामान्य द्वारा की गयी कोशिशों को ही उन्होनें अपने शब्दों में अंजाम दिया है। उन्होनें स्पष्ट व साफ शब्दों में जनता के समक्ष अपनी वात रखी है।

परसाई जी ने कल्पनाओं की व्याख्यायें बहुत ही कम की है। उन्होनें यथार्थ जीवन को ही अपने कथा साहित्य का अंग वनाया है। वे यथार्थ में कल्पनाओं की वात नहीं करते बल्कि किसी भी समस्या को सुनियोजित तरीके से हमारे समक्ष रखकर उसका निदान बताते है। उनकी भाषा काल्पनिक न होकर यथार्थवादिता

से भरपूर है। वैज्ञानिक बोध, प्रखर वैचारिकता एवं समस्याओं तथा घटनाओं की पूर्ण जाँच–पडताल के कारण उनकी संपूर्णता का एहसास कराते है।

परसाई जी ने राजनीतिक विचारों को भी अपने साहित्य में स्थान दिलाया है, वर्तमान राजनीतिक स्थिति को उन्होनें क्रमबद्ध तरीके से स्पष्ट किया है। उनके साहित्य को पढ कर ऐसा लगता है कि उन्हें राजनीति का बहुत बारीक ज्ञान है।

''रुढियों एवं कुप्रभावों से जुड़ा भारतीय न जाने कितनी त्रासदी भुगतता है। सामाजिक कर्मकांड उसे दुखी करते हैं किन्तु फिर भी वह इन्हें दूर करने के लिये विवश है क्योंकि रुढियाँ इनसे चिपकी हुई है। इन्होनें रुढियों को सीने से चिपका रखा है। कितनी विडंबना है। इस वैज्ञानिक युग में भी आम भारतीय रुढियों–अन्धविश्वासों को सीने से चिपकायें बैठा है।''[1]

परसाई जी ने यथार्थवादी रहकर भी सामाजिक कुरीतियों को और विसंगतियों को हमारे सामने उद्घृत किया है। उन्होंने यह भी बताया कि समकालीन कुरीतियाँ जनसामान्य के लिये काफी नुकसानदायक है और वह इसके लिये स्पष्ट मत रखते है।

परसाई जी का यथार्थवाद बहुत ही पुष्ट है, समाज सदैव ही अपनी विचारधारा को अन्य लोगों में बाँटता है। आधुनिक लेखक अपनी कथाओं में इस प्रकार का लेखन नहीं करते वे मात्र दृष्टिभ्रम की बात करते है। परसाई जी ने अपने साहित्य में अकर्मण्यता को कतई स्थान नहीं दिया है।

---

1 परसाई हरिशंकर : 'परसाई रचनावली' पृ- संख्या 54 से उद्घृत।

समाज का दर्पण :-

परसाई जी का रचना संसार सदैव समाजवादी चित्रण से भरपूर रहा है। वे समाज के चिंतक और आर्थिक दशाओं के ज्ञाता रहे है। उनका कल्पना संसार सदैव ही विसंगतियों और सामाजिक कुरीतियों के साथ जुड़ा रहा, वे लगातार विसंगतियों को दूर करने और इसके निदान के लिये ही कृतसंकल्पित रहे है।

नैतिकतावादी चित्रण :-

परसाई जी नैतिकता के धनी है। वे हमेशा राजनीति का क्षेत्र हो या समाज का उसमें नैतिकता के पक्षधर रहे है। नैतिकतावादी दृष्टिकोण के कारण कई वार परसाई जी को भी काफी संकटों का सामना करना पड़ा। समाज मे विसंगति फैलाने वाली रुढियों पर व्यंग्यकार की नैतिकता प्रहार करती है। अतः ऐसी समाज रचना करने वाले या रुढिवादी किस्म के लोग इनसे सदैव भयभीत रहते है।

रुचि परिष्कार की भावना :-

परसाई जी का लेखन परिष्कार से ओतप्रोत है। इनके साहित्य में एक नवीन खोज के लिये स्थान है। मानवीय यथार्थ को उनकी लेखनी लिखने को मजबूर हो जाती थी। वास्तविकता को उजागर करने का कार्य जिस भारतीय व्यंग्यकार ने किया है, उसमें हरीशंकर परसाई जी का नाम अग्रगण्य है। समाज सुधार करने वाला समाज के मानवों को आदर्शों पर चलने का उपदेश देता है,

जबकि व्यंग्यकार बदलते परिवेश के अनुरुप ही समाज के हित को ध्यान में रखकर नये आदर्शो का निर्माण करता है। परसाई जी के आदर्श परिष्कार की शैली को इंगित करते है।

प्रतिबद्ध रचनाशीलता :-

वैचारिक प्रतिबद्धता और मानवीय प्रतिबद्धता के रूपों में कई बार चर्चा का विषय रहा है। वैचारिक प्रतिबद्धता मानवीय प्रतिबद्धता का ही अंग रहा है। समाज की विद्रुपताओं और समस्याओं का चित्रण मानवीय व वैचारिक दोनों ही प्रतिबद्धताओं में आता है। विसंगतियों को सही रुप में प्रस्तुत करना, यस्त मानवता को संबल देना, आर्थिक व राजनीति कारणों से छटपटाते लोगों को एकजुट संगठित कर समाज से लड़ने को प्रेरित करना आदि तथ्य प्रतिबद्ध रचनाशीलता में ही आते हैं।

कोई भी बुद्धीजीवी तटस्थ न्याय व अन्याय की लड़ाई नहीं देख सकता उन्होंने अपनी कथाओं में लिखा भी है कि मैं सदैव उनके साथ हूँ, जो अन्याय, शोषण व अत्याचार के शिकार है।[1]

यथार्थवाद से साक्षात्कार :-

परसाई जी की कहानियों एवं अन्य गद्य रचनाओं की भाँति निबंधों में भी मध्यमवर्गीय यथार्थ व्यक्त हुआ है। परसाई जी ने मध्यमवर्गीय आंतरिक पीड़ा

---

(1) आँखन देखी से उदधृत।

को महसूस किया है। निम्नवर्ग अपनी रोटी की समस्या सुलझाने में पूरी जिंदगी गुजार देता है किंतु मध्यमवर्ग सर्वाधिक मानसिक पीडा भोगता है। वह अपनी सारी उम्र, उम्मीदों, आकांक्षाओं में ही काट देता है। जो है उसका उपयोग न करके जो नही है उसे पाने की इच्छा में वह कभी सुखी नहीं रह पाता। आर्थिक कठिनाईयों का सामना करते हुये भी वहअपनी झूठी-इज्जत बचाने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहता है।

परसाई जी का अद्‌भुत संसार अत्यंत विस्तृत है। उन्होनें मध्यमवर्ग की आर्थिक सामाजिक स्थिति का पर्दाफाश करते हुये मानसिक स्थिति पर भी पर्दाफाश करते हुये दृष्टिपात किया है।

परसाई जी ने जनतांत्रिक पहलुओं का अपने कथा साहित्य में बखूबी चित्रण किया है। उन्होनें अपने विचारों को न केवल समाजवादी चिंतन में उभारा है वल्कि राजनैतिक व आर्थिक विचारों को भी प्राथमिकता प्रदान की है। परसाई जी ने पूँजीवादी व्यवस्था पर प्रहार करते हुये शासनतंत्र की असफलता की ओर भी पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। उन्होनें कहा है कि सामंतवादी तथा पूँजीवादी व्यस्था को नष्ट करने तथा जनतंत्र की वास्तविक स्थिति को मजबूत बनाने में सरकार तथा शासन व्यवस्था दोनों ही बुरी तरह से असफल रहे है। वे इस संदर्भ के उच्चशिक्षित वर्गो के लोगों पर भी व्यंग्य करते थे।

वे शिक्षक जगत की खामियों के प्रति भी सजग रहे है। देश की अव्यवस्था पर ये चिन्तित न होकर अपने प्रमोशन रिसर्च आदि की बातें सोचते है। परसाई

जी ने अपनी रचनाओं में उच्च वर्ग के बनावटीपन स्वार्थान्धता का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण किया है।

परसाई जी ने स्वयं को समाजवादी व्यवस्था से जोड़ने का प्रयास भी किया है वे अपने विचारों को वर्तमान परिस्थिति के काफी नजदीक पाते है। उनके विचार सामान्यजन के ही विचार है। वे व्यंग्य के माध्यम से ही नेता, शिक्षक, डॉक्टर एवं समाजसुधारकों की विसंगतियों को ढूंढ लेते थे।

''पिछले 17 सालों में मोटे होने वालो ने ऐसी परंपरा डाली कि ईमानदार को मोटे होने में डर लगता है। स्वस्थ्य रहने की हिम्मत नही होती।''(1)

परसाई जी ने जनसामान्य के विचारों को ही अपनी कथाओं में चित्रांकित किया है। प्रजातंत्र में अमीरी-गरीबी की बढती खाई की निरंतरता को कम करने पर भी बल दिया है।

परसाई जी ने मध्यमवर्गीय आंतरिक पीड़ा को महसूस किया है। उच्च वर्ग अपनी शानो-शौकत में व्यस्त रहता है। निम्नवर्ग अपनी रोटी की व्यवस्था सुलझाने में पूरी जिंदगी गुजार देता है। किंतु मध्यमवर्ग सर्वाधिक मानसिक पीड़ा भोगता है। वह अपनी सारी आयु, उम्मीदों, आकांक्षाओं में ही काट देता है। आर्थिक कठिनाईयों का सामना करते हुये भी वह अपनी झूठी इज्जत बचाने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहता है।

---

(1) *परसाई हरिशंकर : 'बेईमानी की परत' से उदधृत पृ. सं. 82*

परसाई जी ने मध्यमवर्ग की आर्थिक सामाजिक स्थिति के साथ-साथ मानसिक स्थिति का भी पर्दाफाश करते हुये दृष्टिपात किया है। परसाई जी ने अपने अनुभवों के माध्यम से ही अपनी रचनाओं को विम्व विधान बनाया है, इसी कारण से परसाई जी का साक्षात्कार समाज के सभी वर्गों से हुआ है। समाज की वास्तविक स्थिति से अवगत कराते हुये अपनी सामाजिक दशा का वर्णन भी किया है। परसाई जी ने अपने अनुभवों को कल्पनाओं के साथ जोडा है। परसाई जी की रचनाओं का आम आदमी-अन्य लेखकों के आम आदमी से परे है। वह सरल, सहज, त्रस्त, बनावटीपन से युक्त मंहगाई की मार से त्रस्त तथा महत्वाकांक्षी होते हुये भी वास्तवकि जगत का आदमी है।

परसाई जी ने अनेकों निबंधों में मध्यवर्ग की वास्तविक स्थिति को स्पष्ट किया है। ''गेहूँ का सुख, गुड़ की चाय, दो छोटी इच्छायें, व तीसरे दर्जे का श्रद्धेय'' में मध्यमवर्गीय यथार्थ की सफल अभिव्यक्ति हुयी है।

मध्यमवर्ग व निम्नवर्ग के लोगों से साक्षात्कार में उन्होंने करुणामयी लेखनी का उपयोग किया है। आम मध्यमवर्गीय व्यक्ति की परेशानी की अभिव्यक्ति में परसाई जी की सहानुभूति नहीं अपितु करुणा परिलक्षित होती है।

''मेरी ऐसी कोई असंभव महत्वाकांक्षा नहीं है। वे इतनी छोटी-छोटी इच्छायें है कि लोग उन्हें महत्वाकांक्षा ही नही मानेगें पहली तो यह है कि इंकम टैक्स हूँ और दूसरी यह कि चैक कांटू। यह पागलपन कहा जायेगा कि जब आमतौर पर इंकम टैक्स वचाने की इच्छा की जाती है तब मैं देने को इच्छुक हूँ।''[1]

---

(1) परसाई रचनावली : दो छोटी कथायें, पृ. सं. 133 से उद्धृत ।

ये दोनों इच्छायें अत्यंत ही सामान्य सी प्रतीत होती है किंतु गहराई से देखा जाये तो ये नितांत अपनी है।

परसाई के कथा साहित्य में सदैव यथार्थ से साक्षात्कार हुआ है, उन्होनें अपने निबंध ''गेहूँ का सुख'' में गंभीरता से यथार्थवाद का चित्रण किया है। इसमें मध्यमवर्गीय यथार्थ की अभिव्यक्ति हुयी है।

परसाई जी सदैव ही जनसामान्य के पक्षधर रहे हैं। उन्होंने किसी भी तरह जनता-जनार्दन की सेवा ही की है। वे सही अर्थो में नारायण थे।

''गेहूँ व्यर्थ ही बदनाम हुआ। उसका कोई अपराध नहीं। यहाँ उसने हमारी मन स्थिति ही बदल डाली है। मैनें बोरे में हाथा डालकर मुट्ठी भर गेहूँ निकाला और देखकर कहा अच्छा है। कुछ ऐसी अदा राय माहिर की गोया जिंदगी भर गेहूँ की दलाली करता रहा हूँ।''(1)

मनुष्य जीवन भर कितने ही मनीषियों ने, दार्शनिकों ने सोचा है और लिखा है पर गेहूँ की बात अक्सर भूल गये हैं। कुछ लोग गेहूँ की बात को भौतिक कहकर मुँह चिढ़ाते है। अगर भौतिक बुरा है तो सबसे बड़ी भौतिक क्रिया तो जन्म धारण करना ही है।

मानवीय धारणा को उन्होनें गेहूँ, मकान और आस-पास के माहौल जोडने का प्रयास किया है।

---

(1) *परसाई रचनावली : ''गेहूँ का सुख'' से उदधृत।*

परसाई जी का जनवादी रुप :-

परसाई जी के कथा साहित्य में जनवादी रुप का दृष्टिपात हुआ है। उनके निवंधों में तथा कथाओं में पारिवारिक जीवन की झलक दिखाई पड़ती है। परसाई जी ने पारिवारिक जीवन विद्रुपताओं और विसंगतियों पर भी प्रकाश डाला है।

प्रतिदिन होने वाली खुशियों के बावजूद भी घरेलू, विसंगतियाँ दिखाई ही देती है। परसाई जी के कथा साहित्य में इन विसंगतियों का सूक्ष्म निरीक्षण मिलता है तथा उन्होंने अपनी कुशल रचना प्रतिभा के बल पर इसका सफल चित्रांकन किया है। परिवार समाज की एक अत्यंत महत्वपूर्ण इकाई के रूप में जाना जाता है। अत: विषमतायें एवं असामंजस्य की समस्या भी वहीं से उठ खडी होती है।

परिवार और परंपरावादी रुढिवादिता का चित्रण भी परसाई जी के कथा साहित्य मे हमें दिखलायी देता है। परिवार और उसमें रहने वाले सदस्यों के वीच घनिष्ट सम्वन्ध रहता है और सम्वन्धों के वावजूद भी उनमें कई कमियाँ पायी जाती है। ''कंधे श्रवणकुमार के'' नामक निवंध में भी पारिवारिक स्थिति का विवेचन किया गया। आज भी व्यक्ति अपनी पुरानी मान्यताओं से चिपका हुआ है। परसाई जी ने जनता के वास्तविक चित्रों को भी उभारा है और समाज के शोषणों की असलियत का भी पर्दाफाश किया है। पाखंडो तथा झूठेवादों के

बावजूद भी ऐसे ठेकेदार समाज में रहने वाले गरीब जनता–जनार्दन को लूटने का भी कार्य करते है। जनता इतनी भोली और भटकाव में आने वाली होती है कि तुरन्त ही किसी के वहलावे में आ जाती है।

उन्होनें इस तरफ से सीधे अध्यात्म और धर्म की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है। वे कहते है जनता छोटे–छोटे सुखों को पाना चाहती है। मानसिक अशान्ति तथा सांसारिक दुःखों से छुटकारा पाने का रास्ता ढूँढती हुई अध्यात्म की ओर आकृष्ट होती है जहाँ केवल छलावा एवं भुलावा ही होता है।

परसाई जी के कथा साहित्य की विशेषता उनका जनवादी रुप ही है। वे जनता के कल्याण और दो वक्त की रोटी से भी सम्बन्धित है। उसका मानना है कि व्यक्ति अपनी मेहनत से दो वक्त की रोटी तो कमा सकता है परन्तु भरपेट खा नहीं सकता है। तृप्त व्यक्ति वही हो सकता है जो समाज के सामने हाथ नहीं फैलाते।

उनकी रचना ''असहमत'' में भी उन्होनें एक ऐसे व्यक्ति का रेखाचित्र खींचा है जो अपनी आकांक्षा के अनुरुप समाज से कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता। उसकी यह शिकायत है कि अपनी योग्यता का समाज ने सही मूल्यांकन नहीं किया और इसी कारण से वे अपने परिवेश और उसमें आये सभी व्यक्तियों से वह नफरत करने लगता है। सभी परिस्थितियों से वह असहमत है।

उसकी मनोवैज्ञानिक स्थिति का चित्रण परसाई जी ने बखूबी किया है। वे कहते है कि खिसियाया हुआ वह सभी को ओर ताकता है कि उसकी व्यथा कोई

सुनने वाला नहीं है। वह मानता है कि सभी बेईमान लोग है, किसी को कोई परवाह नहीं है। ऐसो की ही चलती है, मेरी नहीं चलती, मन में फिर तनाव आया।

यही कारण है कि परसाई जी समाज की सडी–गली व्यवस्था का घोर विरोध करते है। वे मानते है कि इसका कारण समाज में वर्गो का विभाजन तथा आपसी मतभेद है।

''उनका जनवादी स्वरुप काफ़ी विस्तृत है – समाज की अव्यवस्था को दूर करने के लिये ठोस कदम उठाना होगें। मात्र भाषणों, लेखों और सर्कुलरों से समाज की स्थिति नहीं सुधर सकती। इसके लिये समाज की व्यवस्था में आमूल परिवर्तन लाना होगा। बिना व्यवस्था में परिवर्तन किये, भ्रष्टाचार के मौके बिना खत्म किये और कर्मचारियों को बिना आर्थिक सुरक्षा दिये, भाषणों, सदाचार समितियों, निगरानी आयोगों द्वारा कर्मचारी जन सदाचारी नहीं होगा।''(1)

हमारी संस्कृति का मूलमंत्र है – ''सर्वे भवंतु सुखिनः।'' प्रत्येक व्यक्ति की भावना होती है कि समाज में सभी का कल्याण हो, सुखी हो। किन्तु आज हमारी यह सामाजिक कल्पना खत्म होती जा रही है। आपसी मतभेदों के चलते जनकल्याण की भावना का विनाश नहीं हो सकता है। हमें एक–दूसरे के प्रति जागरुकता के साथ आगे वढना होगा तभी एक सशक्त समाज की कल्पना सार्थक हो सकती है।

---

(1) *परसाई हरिशंकर : ''सदाचार का तावीज़'' पृ. सं. 60 से उदधृत।*

हमें अपनी अग्रज पीढ़ी को भी नजरअंदाज न करते हुये साथ लेकर चलना होगा। पीढियों का संघर्ष हमेशा समाज के लिये एक समस्या रही है। परसाई जी इसके लिये नयी और पुरानी दोनों पीढ़ियों को बराबर जिम्मेदार मानते है। एक पीढी कर्मक्षेत्र से दूर होती है, तो नवीन पीढी इस क्षेत्र में पदार्पण करती है। ''असफलता इस बात की है कि कोई पीढ़ी पुरानी को निरर्थक व निष्क्रिय मानकर इसकी अवहेलना न करें और उसके अनुभवों का लाभ उठाये।''(1)

हमें समाजवादी समाज की स्थापना करने के लिये आपसी त्रुटियों को भी नजरअंदाज नहीं करना चाहिये बल्कि उसे दूर करने के लिये विचार करना चाहिये। कोई पराया व्यक्ति गलती करता है तो हम उसे टोक देते है परन्तु यदि कोई अपना मित्र या संबंधी गलती करता है तो हम अपना फर्ज भूल जाते है और उसे सचेत नहीं करते।

परसाई जी ने अपनी रचनाओं और कथाओं द्वारा व्यंग्य को ऊँचाईयों तक पहुँचाया है और तटस्थ आधार प्रदान किया है। व्यंग्य के माध्यम से परसाई जी का जनवादी रुप उभर कर सामने आया है।

परसाई जी की साहित्यिक कल्पनायें :-

परसाई जी द्वारा अपनी साहित्यिक रचनाओं में जनता के शोषण का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है उन्होंने समाज के शोषण और उसके ठेकेदारों के विरुद्ध भी अपनी आवाज उठायी है। परसाई जी द्वारा उपन्यास के साथ-साथ

---

(1) परसाई हरिशंकर : पगडंडियों का जमाना पृ. सं. 80 से उद्धृत।

कई छोटी रचनायें व निबंध भी लिखे है। इनके द्वारा तीन उपन्यासों की रचना की गई है। जिनमें ''तट की खोज'', ''ज्वाला और जल'' तथा ''रानी नागफनी की कहानी'' प्रमुख है।

तट की खोज शिक्षित मध्यमवर्गीय समाज के बनते-बिगड़ते आदर्शो का स्वरुप प्रस्तुत करता है। इसमें नये व पुराने संस्कारों का द्वंद है। उन्नति करने के बावजूद भी समाज में नारी को सती-सावित्री वाला रुप ही देखना होता है असामंजस्य से उत्पन्न मानसिक चित्रण इस उपन्यास की नायिका में देखा जा सकती है।

''ज्वाला और जल'' में भी मध्यमवर्गीय युवक की मानसिकता का वर्णन है। तीसरा उपन्यास ''रानी नागफनी की कहानी'' में स्वतंत्रता के बाद इस देश में स्थित सामंतवादी पूँजीवादी सत्ता के बेईमान मंसूबों को उजागर किया गया है।

जब साधारण जनता रोटी, कपड़े की माँग करती है, अराजकता और सत्ताधीशों की विलासिता के विरुद्ध आवाज उठाती है तब दो राज्यों के अधिपति आपस में युद्ध की घोषणा कर देते है और जनता का ध्यान युद्ध की तरफ चला जाता है।

परसाई जी ने तीनों ही उपन्यासों में मध्यमवर्गीय व्यवस्था का चित्रण प्रस्तुत किया है और पूँजीवादी जनतंत्र की असलियत को स्पष्ट किया है। पूँजीवादी और अंग्रेजी हूकूमत में भारतीय उम्मीदवारों से पाश्चात्य सभ्यता के प्रश्न पूछे जाते है जिसमें वे असफल हो जाते है और अपना इंटरव्यू सफल नहीं दे पाते है।

परसाई जी द्वारा मध्यमवर्गीय संघर्ष को भी स्पष्टता प्रदान की है। उनके उपन्यासों में मध्यमवर्गीय व्यक्तियों को भ्रष्टाचार, अव्यवस्था आर्थिक, मजबूरी और बढने की लालसा के बीच जीने वाले मध्यमवर्ग की समस्याओं को अभिव्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम बने।

परसाई जी ने शोषित वर्ग को भी समाज के ठेकेदारों से लड़ने की हिदायत दी है। आजादी ही के बाद के व्यामोह तथा पाखंड पर प्रहार करने और मध्यमवर्गीय समाज और बेबसी को वाणी देने में एक कारगर अस्त्र साबित हुआ।

परसाई जी ने फंटेसी के माध्यम से आधुनिक युग की वास्तविकताओं पर प्रकाश डाला है। आधुनिक युग की वास्तविकताओं में चरित्र वास्तविक नहीं होते किंतु वास्तविक होने का भ्रम पैदा करते है। और कभी-कभी यथार्थ को पूरी ईमानदारी से व्यक्त करते है।

परसाई जी ने अपने साहित्य में काल्पनिक किंतु यथार्थ चित्रांकन प्रस्तुत किया है। वे समाज के साथ-साथ आर्थिक व राजनीतिक पहलुओं को भी अपने साहित्य में स्थान प्रदान करते है। उन्होनें निबंधों व छोटी-छोटी रचनाओं के माध्यम से मनोविकृतियों को भी अपना विषय बनाया है।

उनके मनोवैज्ञानिक विवेचनों में ''सद्‌गुरु की महिमा'', ''समय काटने वाले'', ''नीलकण्ड'', ''तीसरे दर्जे के श्रद्धेय'', ''महानुभूति के रंग'', ''सहानुभूति'' आदि है, जिसमें मनोवृत्तियों व मानवीय व्यवहार का सूक्ष्म विवेचन किया है।

''स्वेच्छा से विषपान करने में नीलकण्ठ का एक बड़ा आकर्षण है। अपनी कोशिश यह होती है कि जहर तो कम से कम पीयें, यह कंठ अधिक से अधिक नीला हो और कोई तो गले पर नीली स्याही पोतकर नीलकण्ठ बने फिरते है।''(1)

उन्होनें बनावटी और छद्मपूर्ण व्यवहार करने वालों के खिलाफ व्यंग्य तो किया है परन्तु उनसे बचने की भी हिदायतें दी है। बनावटी सहानुभूति दिखाने वाले लोगों के भीतर का यह विवेचन व्यक्तिगत नहीं अपितु समष्टिगत है, समाज में इस प्रकार के लोगों की कमी नहीं है।

परसाई जी ने धर्म-पाखंडों पर भी समाज का ध्यान आकृष्ट किया है। धर्म की आड़ लेकर जनता का शोषण भी एक अनैतिक कार्य है किंतु धर्म की ओर से जनता को आसानी से लूटा जा सकता है। भोली-भाली जनता इनके जाल में फँस जाती है। ''उपवास से वर्षा'' नामक निबंध में परसाई जी ने जनता का शोषण करने वाले ढोंगियों का ही पर्दाफाश किया है।''(2)

परसाई जी ने इन ढोंगियों को बढावा देने वालों को भी खूब कोसा है। उन्होनें कहा है कि वैज्ञानिक युग में इस तरह की बातों का क्या मतलब है किंतु तर्क और प्रमाण की कसौटी से दूर रखकर इनको पब्लिसिटी की जाती है।

परसाई जी ने अपने साहित्य में प्रत्येक विचारों एवं निबंधों का वर्णन किया है। वे आर्थिक व राजनीतिक विषयों पर भी बराबर की पकड़ रखते थे।

---

(1) परसाई हरिशंकर : ''नीलकंठ'' से उदधृत पृ. सं. 161
(2) परसाई हरिशंकर : ''उपवास से वर्षा'' से उदधृत पृ. सं. 75

परसाई जी ने अपने व्यंग्य के माध्यम से जीवन के यथार्थ को खोजने का प्रयास किया है और वे इसमें सफल भी हुये हैं। उनका मानना है कि जीवन की मूलभूत आवश्यकतायें हमारे पास है, उसका उचित विदोहन भी हो रहा है परन्तु कहीं-कहीं इसका गलत प्रयोग करके अपनी ही छवि खराब कर डालते हैं। समाज के साथ चलते रहने और उसके भटकाव को रोकने की बात परसाई जी ने की है।

परसाई जी का सतर्क वैज्ञानिक बोध, अनुभव तथा कल्पना तीनों ही मिलकर उनके निबंधों को अत्यंत ग्राह्य बना देते है। परसाई जी मात्र अनुभव की उडान नहीं भरते न ही मात्र अनुभव का विवरण देते है बल्कि इन दोषों को ही संतुलित रुप प्रदान करते ह। परसाई जी ने स्वांतयोत्तर भारत की आर्थिक स्थितियों का सूक्ष्म अवलोकन किया है।

परसाई जी ने अर्थव्यवस्था का सही स्वरुप प्रस्तुत किया है। साथ ही आम आदमी की भी भर्त्सना की है जो अपना हक भी छीन नहीं सकता। जहाँ दान व त्याग की आवश्यकता नहीं होती वही त्याग का ढोंग करता है। परसाई जी ने बताया है कि व्यक्ति भी आर्थिक असमानता चाहता है, वह ऐसा समाधान नहीं चाहता। परिवर्तन व क्रांति के इच्छुक कितने कम लोग है सहते जाना आदमी की नियति बन चुकी है। अनावश्यकता सहनशीलता तथा तटस्थता भी कितनी घातक हो सकती है।

परसाई जी पक्षधर लेखक माने जाते है उनकी पक्षधरता सर्वहारा वर्ग के प्रति है। परसाई जी ने उनके प्रति अतिरिक्त सहानुभूति नहीं व्यक्त की है बल्कि उन्होनें सही स्थिति की यथार्थ अभिव्यक्ति की है। परसाई जी ने समग्र मार्क्सवादी चिंतन दिया है और मजदूरों की वास्तविक स्थिति का मूल्यांकन किया है।

....

अध्याय - चतुर्थ

अध्याय-चतुर्थ

(1) हरिशंकर परसाई का यात्रा वृत्तान्त :-

अनुभव व्यक्ति के व्यक्तित्व में निखार लाता है। वह व्यक्ति के आपसी भेदभाव को दूरकर उसकी मीमांसा को और अधिक गहन करता है। मानव जीवन में निरंतर विनाश करने का कार्य अनुभव ही करता है। परसाई जी का लेखन बहुधा उनके यात्रा और अनुभव जन्म विचारों के कारण ही गहन छाप छोड़ता है।

परसाई जी ने अनुभवों का परिष्कार किया है, उन पर चिन्तन किया है। एक कथा लेखक अपने अनुभवों परिष्कृत विचारों के माध्यम से रचना को जन्म देता है। अतः रचनाकार का अनुभव जितना सफल होगा उसकी कृति उतनी ही महान होगी। क्योंकि रचनाकार अत्यंत संवेदनशील होता है।

रचनाकार की विद्वता तभी साबित होती है जब वह मनुष्य को अंतः व बाह्य दोनों ही तरीके से रख लेता है।

परसाई जी के लेखन में अनुभवजन्य परिपक्वता है। उन्होनें कबीर की तरह ही दुनिया को बारीकी से परखा है। उन्होनें समाज में व्याप्त विसंगतियों और पाखंडों से साक्षात्कार किया है। वे सतत् घूम-घूमकर ही समाज के दर्शन किया करते थे। उनके व्यंग्यों में कितनी, घमन्तु प्रवृति के भी दर्शन होते है। वे अपने कवि लेखक मित्रों के यहाँ निरन्तर जाते रहते थे और उनके अनुभवों से

अपनी कथाओं में नये-नये विषयों को प्रवेश देते थे। जीवन की यथार्थता को पास से देखने का कार्य परवाई जी ने ही किया है।

यही कारण है कि समाज के प्रत्येक पहलूओं को उनकी रचनाओं में जगह मिल सकी है। व्यंग्य को परसाई जी ने एक नयी अर्थवत्ता दी है। वे स्वयं स्वीकार करते है कि व्यंग्य को मैने उपहास कभी नहीं माना, यह एक गंभीर और जिम्मेदारीपूर्ण लेखन है। परसाई जी के यात्रावृत्तान्त सुदृढ और विवेचनापूर्ण है। उनकी यात्रायें शुद्ध मैत्रीपूर्ण और कथाजन्य रहती थी उसके बाद वे अपना लेखन करते थे।

परसाई जी ने अपनी यात्राओं मे माध्यम से राजनीति, आर्थिक व सामाजिक परिवेश की भी विसंगतियों को सम्मिलित किया है।

परसाई जी का समकालीन यथार्थ से रिश्ता अटूट है। उनका रिश्ता अटूट है और दूसरी तरफ व्यंग्य वज्र सा कठोर है, इसी प्रकार मानवीय संवेदना की सी कोमलता भी है। परसाई जी यात्रावृत्तांत के माध्यम से अपने मित्रों सद्परिचितों और रिश्तेदारों के मर्मस्पर्शी लेख भी लिखते थे। उनकी लेखनी का अंदाजा सदैव मित्रों-परिचितों के अनुभवों और उनकी दार्शनिकता से लगाया जा सकता है। परसाई जी ने परिचितों के अनुभवों को ही प्राथमिकता दी है तथा उसी को आधार मानकर वे अपनी कहानियों में तरकीह देते हैं।

परसाई जी ने यात्रावृत्तांत के माध्यम से कहानियों व निबंधों के बने बनाये धंधे को तोडकर संस्कार व संस्कृति को बदलने की कोशिश की है। अपने देश और समाज में ठीक वर्तमान मे जो कुछ घट रहा है वह परसाई जी की कहानियों में बखूबी देखा जा सकता है।

परसाई जी की कहानियाँ व यात्रावृत्तांतों में मानवीयता तथा नैतिक सरोकार दिखलाई देता है वैसा अन्य कहीं नहीं दिखलाई देता है। परसाई जी के यात्रावृत्तांत विशुद्ध यात्रा वृत्तांत नहीं है बल्कि यात्रा के दौरान प्राप्त अनुभवों और चिंताओं का एक खजाना है जिसे वे बाद में अपने मित्रों के साथ विचार-विमर्श कर लिखते थे।

(2) परसाई जी के उपन्यासों की पृष्ठभूमि :-

परसाई जी ने हिन्दी साहित्य में कई उपन्यास तो लिखे परन्तु सर्वाधिक उनकी कहानियाँ और निबंध विधा में ही दक्षता रही। परसाई जी ने गद्य साहित्य में विभिन्न विषयों का समावेश किया है। परसाई जी ने व्यंग्य लेखन के द्वारा आधुनिक समाज के लगभग सभी कोनों को छुआ है। जीवन के सभी सम-सामयिक प्रश्नों पर गहनता से विचार किया है।

धर्म की पृष्ठभूमि :-

सभी धर्म मानवीय समता, निःस्वार्थ, त्याग और आदर्शो की भावना को लेकर प्रकट हुये थे। किन्तु उनके मतावलंबी आज ठीक इसके विपरीत आचरण

कर रहे है। ''धर्म का जो वास्तविक तत्व है, उसे भुलाकर आडंबर किये जा रहे है। धन चोचले वताये जा रहे है, मैनें पहले भी कहा था कि जिस धर्म का पालन करने में लाख रुपये लगे, वह कार्य नहीं धंधा होगा।[1] सब धर्मो की वही दुर्गति हुयी है।

सब धर्मो को उसके भक्तों ने ही कलंकित किया है। व्यक्ति समाज में प्रतिष्ठा प्राप्ति करने के लिये लाखों रुपये लगा देता है। अपने देश की आर्थिक परिस्थितियों से अनभिज्ञ वह घी, दूध, दही, पानी की तरह बहाता है। उसे यह नही मालूम कि उसके देश का अर्थमंत्री तमाम दुनिया में हाथ फैलाये भीख माँग रहा है। उसे यह नहीं मालूम कि पंचवर्षीय योजना के लिये हमारे पास पैसे नहीं है।[2]

परसाई का धर्म मानवीयता के व्यापक धरातल पर खडा है। ये मनुष्य को सर्वश्रेष्ट मानते है। जो कार्य मनुष्य की अवहेलना करे वह धर्म है ही नहीं, ढोंग है। उन्होनें कहा है कि ''मनुष्य से बड़ा कोई नहीं है, मनुष्य का जिसमें कल्याण होता है वह धर्म है।

परसाई जी कहते है कि जो बिना काम किये खाता है, उसे जरुर नर्क मिलना चाहिये लोग पंडित को पैसे देकर गृह शांति का जाप करवाते है। मानो भगवान से कह रहे तो, परन्तु मनुष्य से बडा कोई नहीं है।

---

(1) परसाई हरिशंकर : ''आँखन देखी'' से उदघृत पृ. सं. 361

(1) परसाई हरिशंकर : ''जैसे उसके दिन फिरे'' से उदघृत पृ. सं. 54

शिक्षा सम्बन्धी पृष्ठभूमि :-

परसाई जी का कहना है कि हमारे देश में यह एक परंपरा ही बन गयी है जो जितने ऊँचे पद पर हो वह उतना ही कम काम करेगा। प्राइमरी, मिडिल, हाईस्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय क्रम से अध्यापक का पढ़ाने का कार्य कम होता जाता है। विश्वविद्यालय में बिल्कुल ही पढाई नहीं होती, प्राचार्य आशिर्वाद देते है। ''अपना युगों से विश्वास रहा है कि विद्या पढ़ने से नहीं, गुरु-कृपा से आती है। गुरु अगर प्राप्त हो जाये तो अपने प्रिय विद्यार्थियों को एकलव्य का अंगूठा काटकर दे सकता है।[1]

शिक्षा के मामले मंत्रियों द्वारा तय करने के बाबत परसाई कहते है, और एक विचित्र बात है। हमारे यहाँ भाषा और साहित्य के मामले भी मंत्रियों द्वारा तय होते हैं। भाषा या लिपि के निर्णय विशेषज्ञ नहीं लेते, मंत्रिगण बैठकर तय कर लेते है। इन मंत्रियों को शिक्षा, साहित्य और भाषा के विषय में कितना ज्ञान है। यह कोई बताने की बात नहीं है। हमारी हर वस्तु का भाग्य-विधाता राजपुरुष और राजनेता है, सर्वज्ञ है।

आजकल शिक्षा को भी व्यवसाय बनाया जा रहा है। जगह-जगह प्राइवेट स्कूल व कॉलेज खोले जा रहे है। उनमे छात्रों के भविष्य के बारे में, कम लाभ-हानि के बारे से ज्यादा ध्यान दिया जाता है। अध्यापकों को घर का नौकर समझा जाता

---

(1) परसाइं हरिशंकर : परसाइं रचनावली से उदघृत पृ. सं. 60

है। व्यापारी लोग 'कॉलेज' को शिक्षा की दुकान कहते है और इसे खोलने से बेहतर समझते है चीनी का स्टॉक भरना। और कुछ नहीं बन पाता, वह मजबूर होकर शिक्षक बन जाता है। आज धनी लोगों द्वारा शिक्षा की दुकानें खोली जा रही है। और उसमें अध्यापक नौकर की भाँति होती है।

समाज सम्बन्धी पृष्ठभूमि :-

परसाई जी समाज की सडी-गली विसंगतियों और व्यवस्थाओं का घोर विरोध करते है, वे इसका कारण समाज में वर्गो का विभाजन मानते है। समाज की अव्यवस्था दूर करने के लिये ठोस कदम उठाना होगा। आज भाषणों, लेखों और सर्कुलरों से समाज की स्थिति नहीं बदल सकती, इसके लिये समाज की व्यवस्था में आमूल परिवर्तन लाना होगा। बिना व्यवस्था में परिवर्तन किये, भ्रष्टाचार के मौके बिना खत्म किये और कर्मचारियों को बिना आर्थिक सुरक्षा दिये, भाषणों, सर्कुलरों, सदाचार समितियों, निगरानी आयोगों द्वारा कर्मचारी सदाचारी न होगा।[1]

आज शार्टकट पूरे समाज का ध्येय वाक्य बन गया है। बिना मेहनत या कम मेहनत कर उन्नति के लिये शिखर पर पहुँच जाने की परजीवी भावना पूरे समाज की आदर्श बन बैठी है। परसाई जी ने इसे ''पगडंडियों का जमाना'' कहा है।

---

(1) परसाइ हरिशंकर : ''रानी नागफनी की कहानी'' से उदधृत पृ. सं. 72

''सफलता के महत्व का साई का दरवाजा वन्द हो चुका है, कई लोग भीतर घुसे है और उन्होनें कुण्डी लगा दी है। जिसे उसमें घुसना है, वह रुमाल नाक पर रखकर नायदान में से घुस जाता है।''[1]

परसाई जी का कहना है कि हम लोग दुनिया भर की उदारता और ''वसुदैव कुटुंबकम'' का नारा लगाते है किंतु अपने सामाजिक और पारिवारिक परिवेश में इतने संकीर्ण है कि हमारी नयी पीढी अंदर ही अंदर घुटन महसूस करने लगती है। घुटन में विकृति और रुग्णता आती है।

वह एक स्थान पर कहते है – तुम्हारे जीवन का पाखंड है यह, जिसके कारण असंख्य युवक–युवती अपनी जीवन को अंत करने योग्य समझने लगते है।[2]

प्रेम सरीखी चीज धीमा जहर क्यों वन जाती है। समाज में इतने सारे वंधन नहीं लगाने चाहिये। मनुष्य का मन गणित के सूत्रों के अनुसार कभी नहीं बन सकता।

परसाई जी ने समाज में रहकर समाज की कुरीतियों को ही विचार में रखा है। समाज भी अपने विचारों को थौपने की कोशिश करता है उसमें से जो भी स्वार्थ परक तत्व होते है। वह इससे फायदा उठाने की कोशिश करते है। समाज

---

(1) परसाई हरिशंकर : ''आँखन देखी'' से उदधृत पृ. सं. 125
(2) परसाई हरिशंकर : ''आँखन देखी'' से उदधृत पृ. सं. 70

की कुरीतियाँ सदैव मनुष्य पर हावी होने की कोशिश करती है वह या तो उसे छोडती नहीं या मानवीय लालच उसे छोडता नहीं।

परसाई जी का कहना है कि संस्कृति का मूल्यांकन है - सर्वे भवन्तु सुखिनः। प्रत्येक भारतीय की कामना होती है कि समाज में सभी का कल्याण हो, सभी समृद्ध हों, सुखी हों। किंतु आज हमारी यह सामाजिक भावना खत्म होती जा रही है। परसाई जी का कहना है कि कुछ लोग समाज-सेवा के नाम पर चंदा एकत्र करते है। उससे समाज का कम, अपना भला ज्यादा करते है। जब जनता इनकी चालाकी समझ जाती है तो ये कहते है - ''मानव-सेवा में बहुत खतरे है, मेरा दो बार घिराव हो चुका है और तीन बार पिट चुका हूँ।''(1)

पीढियों का संघर्ष हमेशा समाज के लिये एक समस्या रही है। परसाई जी इसके लिये नयी और पुरानी दोनों पीढियों को बराबर जिम्मेदार मानते है। एक पीढी इस क्षेत्र में पदार्पण करती है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि कोई पीढ़ी पुरानी को निरर्थक व निष्क्रिय मानकर उसकी अवहेलना न करें और इसके अनुभवों का लाभ उठायें। पुरानी पीढी भी नयी पीढी को अपने समय की दुहाई दे-देकर अनुभवहीन न समझें।

---

(1) ''आँखन देखी'' : संपादक कमला प्रसाद से उदघृत पृ. सं. 63

साहित्य सम्बन्धी पृष्ठभूमि :-

समाज को साहित्य की आवश्यकता है क्योंकि वह सिर्फ पेट भरकर ही जीवित नहीं रह सकता। जैसा है वह इस स्थिति से ऊपर उठना चाहता हैं। साहित्य समाज की इस आवश्यकता को पूरी करता है, साहित्य उदात्तीकरण करता है। साहित्यकार अकेले ही सृजनकार्य करता है। किन्तु तब उसके मानस में अपूर्ण समाज का अनुभव होता है अकेले का नहीं। परसाई जी का कहना है कि जो रचनाकार जमाने के साथ न चल सके तो अपनी रचनायें दूसरों पर थोपकर उनका वक्त बर्बाद न करें। जो आगे जाते है, उन्हें जाने दें।

एक परिपक्व साहित्यकार - अपने साहित्य सृजन से लोगों को नयी दिशा देता है किन्तु जो चूक गये है वे साहित्य की प्रगति की राह में रोड़े बनकर - अडकर खड़े हो जाते है।

''मैं शाश्वत साहित्य रचने का संकल्प लेकर लिखने नहीं बैठता जो अपने युग के प्रति ईमानदार नहीं होता, वह अनन्तकाल के प्रति कैसे हो सकता है, मेरी समझ से परे है।''(1)

परसाई जी अपने युग के प्रति ईमानदार है, वे वर्तमान युग और उसकी समस्याओं के प्रति जागरूक है। साहित्य की एकरुपता के बारे में उनका कहना है कि विदेशी रचनाकारों को देश विदेश घूम सकने की सहूलियत होती है। परन्तु

---

(1) परसाई हरिशंकर : रानी नागफनी की कहानी से उदधृत पृ. सं. लेखकीय से

भारतीय रचनाकारों को घर–गृहस्थी के फेर में पड़ना पड़ता है। नौकरी करके परिवार का पेट पालना पड़ता है। इसी कारण ऐसे रचनाकार गृहस्थीजन्य कहानियों व समस्याओं को हमारे समक्ष रखते हैं।

हिन्दी में आलोचना की दुर्गति के बारे में परसाई जी कहते हैं आज हिन्दी में आलोचना की स्थिति बड़ी दयनीय है। विशेषकर आलोचकों के बारे में यह सोचा जाता है कि वे अपने समय के साहित्य से परिचित हो व विचार रखने में जल्दबाजी न करें।(1)

परसाई जी का कहना था कि साहित्यकार अपने साहित्य के जरिये ही कुछ कमा सकता है यदि उसकी इच्छा है तो, अन्यथा नहीं। परसाई जी साहित्य को धर्म मानते है, व्यापार नहीं। वे कहते थे कि साहित्य सृजन के बदले आढ़त की दुकान खोल लेनी चाहिये। साहित्य में तो कबीर की तरह घर फूंककर निकलना पड़ता है।

'साहित्य और राजनीति' के संबंध में परसाई जी कहते है कि साहित्यकार को राजनीति से एकदम अलग–थलग नहीं होना चाहिये। यदि साहित्यकार कहे कि हम तो अपने विचार रखते है, हमें राजनीति से क्या लेना देना, यह ठीक नहीं है।'

परसाई जी का लेखन किसी क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है बल्कि पूर्ण भारतीय समाज भी उसमें मौजूद हैं। समाज का कोई भी, कोना परसाई जी की

---

(1) परसाई रचनावली : पृ. सं. 191

सजग दृष्टि से छूटा नहीं है। वे समग्र जीवनदर्शन संपन्न व्यक्ति है। वे चाहते है कि जीवन को सुधारने के लिये व्यक्ति को नहीं, पूरी समाज व्यवस्था को ही बदलना होगा।

वे यथार्थवादी मान्यता के लेखक है। उन्होनें धर्म, राजनीति, शिक्षा, अर्थ और संस्कृति सभी क्षेत्रों की विषमताओं के विरुद्ध लेखनी चलायी है, उनकी लड़ाई सामाजिक न्याय के लिये है। वे सामाजिक बुराईयों से समाज को आगाह करना चाहते हैं। परसाई जी के कथा लेखन में जीवन की विविधता छुपी हुई है।

(3) जनवादिता का उद्‌भव और विकास :--

परसाई जी का लेखन जनवादी लेखन है। वे जनसामान्य के लेखक है। परसाई जी की कहानियाँ उनके जीवन के अनुभव को प्रकट करती है। अतः उनके साहित्य में सामाजिक जीवन की तस्वीर उभरती है। यही कारण है कि परसाई जी के साहित्य में सामाजिक विघटन और विसंगतियों के चित्र उभरते है।

परसाई जी का मानना है कि मनुष्य की मुक्ति के दो मार्ग है – उसकी कमजोरियों, गलतियों तथा कमियों का एहसास करा दिया गया तथा उसे उसकी ताकत का अनुमान करा दिया जाये, उसे उसके अधिकारों के प्रति जागरुक किया जाये। यही कारण है कि शायद ही कोई सामाजिक विसंगति अन्र्तविरोध होगा जो परसाई जी के नजरों से छूट गया हो।

जनवादिता के दूसरे पहलूओं के अन्तर्गत उन्होनें गरीबों की दशा को भी स्पष्ट किया है। ''परसाई जी ने अपनी कहानियों में पुरुष के कपट स्वभाव एवं संकीर्ण मानवीयता पर गहरा आघात किया है। बदलते हुये सामाजिक परिवेश मे भी उनकी मानवीयता पर गहरा आघात किया है। क्योंकि उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। पुरुष आज भी अहं का शिकार है तथा औरत को प्रोपर्टी समझता है ''जिसकी छोड भागी'' में परसाई जी ने पुरुष के अहं को दिखाया है। पुरुष स्त्री को तलाक नहीं दे सकता है वल्कि उसकी हत्या कर सकता है।''

''एक लडकी पाँच दीवाने'' में परसाई जी ने नारी मनोविज्ञान का सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया है, एक भोली-भाली कन्या को चालाक युवती बनाने में समाज का बहुत बड़ा हाथ होता है। परसाई जी ने आम मध्यमवर्गीय महिलाओं के चित्र भी उपस्थित किये है। ''पाठक जी केस'' में उन्होनें ''पाठकिन'' का चित्रण सच्ची सहधर्मिणी के रुप में किया है जो पाते हर बात का समर्थन करती है चाहे वह उचित हो या अनुचित।

''किताब का एक पन्ना'' नामक कहानी में उन्होनें जनवादिता का एक ''उदाहरण और प्रस्तुत किया है। उन्होनें गरीव दुखिया का हृदय विदारक चित्र हमारे सामने रखा है। परसाई जी ने उन लोगों पर भी व्यंग्य किया है जो गरीबी व दुःखी से अभिभूत नहीं होते वल्कि उस स्थिति का भी लाभ उठाना चाहते है।

परसाई जी द्वारा सामान्य जनता को महज समाज की अभिभूति ही नहीं बताई है बल्कि उन्हें आगाह भी किया है कि वह समाज के उन ठेकेदारों से सावधान रहे जो गरीब व शूद्र जनता के सीधाईपन का फायदा उठाने का प्रयत्न करते है।

परसाई जी ने कहानियों व लघु कथाओं के माध्यम से मनोविज्ञान का विवेचन व विश्लेषण किया है।''

परसाई जी ने नारी मनोविज्ञान के केवल उपरोक्त पक्ष पर विचार नहीं किया है बल्कि उन्होनें उसके दूसरे पक्ष को और भी सजीवता और मार्मिकता से प्रस्तुत किया है, वह है ''नारी द्वारा नारी का शोषण'' नारी का शोषण पुरुष ही नहीं करते है बल्कि स्वयं नारी ही नारी की शत्रु होती है। परसांई जी कहते है कि नारी आपस में ही एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयास करती है।

परसाई जी ने समाज में व्याप्त अनेकानेक विसंगतियों को व अर्न्तविरोध का चित्रण किया है। ''सदाचार का ताबीज'' में उन्होंने जनवादिता के आधार पर प्रशासनतंत्र पर करारा आघात किया है। ''सदाचार का ताबीज'' वास्तविक आर्थिक सुरक्षा के अभाव में भ्रष्टाचार निरोधक प्रयासों को असफलता की ओर इंगित करती है।

परसाई जी ने जन सामान्य की आपसी लड़ाई को भी इंगित किया है। जनवाद इनका प्रिय विषय रहा है। जन सामान्य हमारे समाज का ही हिस्सा होते है और वह बेचारे है क्योंकि उनको सहारा देने वाला कोई नहीं है कोई उनको सांत्वना देने वाला नहीं है।

यही कारण है कि परसाई जी द्वारा जनता की आवाज को और बुलंद करने का प्रयास किया गया है। वे जनवादी दार्शनिक कथाकार है और एक स्पष्ट ओजस्वी वक्ता भी है। उन्होनें अपनी कहानियों में तटस्थ रहकर अपनी लेखनी चलायी है। परसाई जी की कहानियाँ जनवेदना का एक उजागर रुप है जिसमें जनता की आवाज दिखाई देती है।

परसाई जी के लेखन को पढकर ऐसा लगता है मानो हमारे समाज का एक प्रखर व तेजस्वी सूर्य जो हमारा मार्गदर्शन है और निरंतर हमारे मार्ग में मिलता है। परसाई जी एक समाजवादी लेखक थे। उनका साहित्य अपनो के लिये ही था, समाज का प्रत्येक कोंण और बिंदु उनकी लेखनी से बचा नहीं था। परसाई जी समाज के साथ–साथ आर्थिक, राजनीति व समाज के अन्य पहलुओं को, जो कि विसंगतियों के रूप में उन्हें दिखे, को हमारे सम्मुख रखा है।

परसाई जी ने ''भेड़ें और भेड़िये'' नामक कहानी में अवसरवादिता के साथ–साथ राजनेताओं की जनता को बहकाने वाली प्रवृत्ति पर भी प्रकाश डाला है। उनका मानना था कि इन 50 वर्षो में जितनी अधिक विसंगतियों का प्रवेश राजनीति में हुआ है उतना अन्यत्र कहीं नहीं हुआ है।

वे राजनीतिज्ञों के दुश्मन नहीं थे, परन्तु उनकी भावनाओं और घृणित प्रवृत्ति के प्रवल विरोधी थे। जनवादी के रुप में उनकी अप्रतीम छवि हमारे सम्मुख आज भी आती है।

परसाई जी ने अपनी कथाओं में धर्म का अनुचित प्रयोग करने वाले स्वार्थी तत्वों पर प्रहार किया है तथा उनकी वास्तविकता का नाम स्वरुप दर्शाया है।

''साधना की फौजदारी का अंत'' नामक कहानी भी इन्हीं पाखंडियों के विरोध में लिखी गयी है। भोले-भाले गरीब क्लर्क को जब आज ज्ञान की प्राप्ति होती है तब वह अपना क्रोध महंत जी पर उतारता है। आत्मज्ञान एवं साधना का अंत शांतिपूर्ण न होकर हिंसक एवं बर्बर हो जाता है। धर्म के नाम पर पाखंड करने वाले महंतो और ठेकेदारों के प्रति उनका क्रोध आवश्यक भी है।

इस प्रकार से परसाई जी ने अपने विचार जनवादिता के रुप में प्रत्येक पहलुओं के रुप में हमारे सामने रखने की कोशिश की है। परसाई जी का मानना था कि समाज में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति का सम्बन्ध सामाजिक तथ्यों से होता है। इस प्रकार उनके उपन्यासों और कहानियों में जनवादिता कूट-कूटकर भरी है।

(4) परसाई जी का जनवादी दृष्टिकोण :-

परसाई जी ने सदैव जनकल्याण के दृष्टिकोण के अनुरुप ही अपनी कथाओं का सृजन किया है। वे एक समाजवादी लेखक थे। परसाई जी ने समाज व राजनीति तथा इन दोनों में सम्बन्धित बिन्धुओं की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया है और उसकी समस्याओं की ओर उनका ध्यान अवश्य ही जाता है, ऐसा कोई पहलू नहीं है जिसकी ओर परसाई जी का ध्यान न गया हो।

परसाई जी ने जनवादी दृष्टिकोण के माध्यम से सामाजिक विसंगतियो को दूर करने का प्रयास किया है।

पिछले कुछ वर्षो में पुरानी आस्थायें व परंपराये टूटी है, जीवन मूल्यों में परिवर्तन हुआ है और नये मूल्य स्थापित हुये है। इस बार पुराने टूटने और नये के स्थापित होने में कई तरह के असंतुलन और अन्तर्विरोध उभरकर सामने आये।

समाज में रहने वाला निम्नवर्ग अपनी बात तो नहीं मान पाता परन्तु समाज के पुराने तौर तरीके और प्रथायें मानने पर मजबूर हो जाता है। उसका वस समाज के ठेकेदारों के सामने नहीं चल पाता है। इस परिस्थिति में परसाई जी ने उन्हें बताया है कि समाज की ऐसी प्रथायें जिसमें तुम्हारा मनोबल टूटता हो और मन अस्वीकार हो जाये, उन्हें न मानकर अपनी वैचारिक शक्ति से किसी नवीन प्रथा का अनुसंधान किया जा सकता है और अपने दैनिक कार्यो से उसे उपयोग में लाया जा सकता है। जिससे आपका मन भी सहज रहकर कार्य करें तथा समाज में भी एक नवीन प्रवाह का संचालन हो सकें।

समाज में कई पुरानी प्रथायें और विसंगती आज भी जीवित है और उसके माध्यम से समाज के ठेकेदार गरीब लोगों व किसानों को परेशान करते है उन्हें तरह-तरह से तंग करते है। ''आज के समाज में एक ओर तो षडयंत्रपूर्ण मुखौटा धारण किये हुये संस्कारों को ढोती हुई पुरानी पीढी है और दूसरी ओर विद्रोही कुंठित, क्रुद्ध युवा पीढ़ी है। इसलिये समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन तो हासिल होते है, परंतु समाजिक विकास की गति बहुत धीमी रही है।''[1]

---

(1) *''नयी कहानी'' - निर्मल वर्मा का लेख से उदघृत।*

परसाई जी का अनुभव संसार काफी वृद्ध है। उन्होंने प्रत्येक समाज की व्यवस्था का अधिक मेहनत से अध्ययन किया है। वे स्वयं के साथ-साथ जनता को भी यह सलाह देते है कि सदैव विसंगतियों और अव्यवस्थाओं के प्रति लड़ते रहो। परसाई जी ने मध्यमवर्ग की आर्थिक-सामाजिक स्थिति का पर्दाफाश किया है तथा उनकी मानसिक स्थिति पर भी पर्दाफाश करते हुये दृष्टिपात किया है।

परसाई जी ने कहानियों और निबंधों में मँहगाई से त्रस्त, आहत, रुमानियत से परे रहने वाले आम आदमी का चित्रण किया है। आम आदमी की परेशानी की अभिव्यक्ति में परसाई जी की सहानुभूति नहीं अपितु करुणा परिलक्षित होती है। उन्होनें व्यंग्य के माध्यम से जीवन संघर्ष और आम अर्थव्यवस्था से हमारे समाज को अभिव्यक्त किया है और उन्हें राह दिखाने का प्रयास किया है।

''दो छोटी इच्छायें'' नामक निबंध में उच्च मध्यमवर्गीय व्यक्ति की दंभित महत्वाकांक्षा का स्वाभाविक चित्रांकन किया हैं यह इच्छा ''मैं'' की न होकर आम आदमी की ईच्छा है।

जो समाज में सम्मान प्राप्त करना चाहते है। सम्मानित समाज में सामाजिक जीवन बिताने के लिये आर्थिक सुदृढता आवश्यक है। मध्यमवर्ग अपना जीवन जीने के लिये नहीं बल्कि दिखाने के लिये भी जीता है। अपनी ईच्छाओं की पूर्ति के लिये वह धन प्राप्ति कहीं से भी कर सकता है।

''मेरी ऐसी कोई असंभव महत्वाकांक्षा नहीं है। वे इतनी छोटी–छोटी इच्छायें है कि लोग उन्हें महत्वाकांक्षा ही नहीं मानेगें पहली तो है कि इंकम टेक्स दूँ और दूसरी यह कि चेक काटूँ।''[1]

इस प्रकार से परसाई जी समाज के प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा और आकांक्षा से भली–भाँति परीचित है वे चाहते है कि समाज अपना बनावटी पन त्याग कर अमली और हकीकत की जिन्दगी जीयें। अपनी छोटी या बड़ी इच्छाओं को कम से कम प्रकट होने दें तथा समाज के अनुरुप उन्हें न समझकर व्यंग्य के हिसाव से सोचे व पूर्ण करने का प्रयास करें।

परसाई जी ने मध्यमवर्गीय व्यक्तियों के कष्ट एवं परेशाानियों को अत्यंत निकट से देखा है। उनकी पूरी सहानुभूति इनके साथ है। परसाई जी भावुक लेखक नहीं है किंतु उनकी संवेदनशीलता ही उनकी रचनाओं को सप्राण बना देती है। मध्यमवर्गीय व्यक्तियों को परसाई जी ने तिल–तिल घुटते हुये देखा है और अत्यंत नजदीक से देखा है। अतः अनुभूति एवं कल्पना के सम्बन्ध के साथ मध्यमवर्गीय यथार्थ का सफल प्रस्तुतीकरण किया है।

परसाई जी की रचनाओं के माध्यम से ही उनका जनवादी दृष्टिकोण झलकता है। परसाई जी ने परिवार के विखंडन और उसकी त्रासदी की भी चुभन सही है। वे सर्वहारा परिवार से ही रहे है। अतः उनका ज्ञान और अनुभव उनकी कथाओं में परिलक्षित होता है।

---

1. *परसाई रचनावली से उदधृत : हमारे समाज में वर विक्रय पृ. सं. 300-301*

''निंदारस'', ''कविरा आप ठगाइये'', ''पगडंडियों का जमाना'', और ''विज्ञापन संस्कृति'' आदि रचनाओं में विभिन्न प्रकार की चारित्रिक योजनाओं का उद्वोधन किया है तथा उनकी मनोविकृतियों का स्वरुप भी चित्रित किया है।

परसाई जी का साहित्य अत्यंत सतर्क एवं रचनात्मक कौशल के कारण विशिष्ट बन गया है। परसाई जी अत्यंत सतर्क और चालाक दर्शक की भाँति स्थितियों का सूक्ष्म अवलोकन करते है। परसाई जी की इस अनुपम अवलोकन क्षमता के कारण ही उनकी रचनाओं में ताजगी बनी रहती है। उसकी घटनाओं की जानकारी आम आदमी को भी रहती है।

इसी कारण वह घटना को वडे गौर से पढता है और बैचेन हो उठ जाता है क्योंकि यह घटना परसाई जी की लेखनी से उद्भूत रहती है। परसाई जी ने अपनी वेवाक एवं ओजस्वी लेखनी से समस्त समाज के अंगो को भी नहीं वख्शा है। वे सभी विषयों पर समान रुप से अधिकार रखते है। परसाई ज़ी हमारे बीच एक जन संवाददाता के रुप में अपना स्थान बनाये हुये है।

समाज और उसे निर्माण करने वाले लोगों के विचार व अनुभूतियों पर ही आज की मीमांसा प्रभावित करती है। आज हम जो कुछ भी सीखते है वह सभी हमारे पूर्वजों की धरोहर को सामने रखकर ही सीखते है।

परसाई जी ने अपनी फेंटेसी के माध्यम से वास्तविकता को हमारे सम्मुख लाकर खडा कर दिया है। फेंटेसी और वास्तविकता दोनों एक दूसरे का ही रुप

है। फंटेसी में वास्तविकता जरूरी भी है। इसके बिना फैंटेसी का अस्तित्व ही संभव नहीं है। यह वास्तविकता और कल्पना के बीच में आवाजाही करती है। एक ऐसी कल्पना जो वास्तविक से अधिक वास्तविकता का आभास देती है। भाषा में असाधारण रचना सौंदर्य उत्पन्न करती है।

फंटेसी से कथाकार वास्तविकता को प्रस्तुत करता हैं, उसमें उसके दुःखद और सुखद दोनों ही प्रकार के अनुभव होते है। वह अपनी कथाओं को इन्ही के माध्यम से आकार देता है। परसाई जी ने इसी के बीच कहीं-कहीं व्यंग्यों के बाण भी छोडे हैं। परसाई जी का समाज सुधारक रूप उन पर हावी हो जाता है। वहाँ व्यंग्य असरदार नहीं रह जाता, कभी वे विचारक भी रहते है और प्रारंभ मे तो परसाई जी ने केवल व्यंग्य और तीखे बाणों की रचनायें ही अभिव्यक्त की थी।

तत्पश्चात् ही परसाई जी द्वारा अपनी रचनाओं में कलात्मक शिल्प प्रस्तुत किया है। परसाई जी ने कहीं-कहीं लेखन में तीक्ष्णता और पैनेपन की भी छवि छोड़ी है। परसाई जी द्वारा समाज की विसंगतियों को ही उजागर किया गया है। परसाई जी एक जनवादी लेखक व छायाकार है।

परसाई जी का संवादपक्ष :-

परसाई जी ने सदैव भाषा को सरलता ही प्रदान की है। वे अपनी कथाओं मे संवाद को महत्व देते है। संवाद उनके कथा साहित्य की जान है। उनके द्वारा जो

भी रचना शिल्पज्ञता प्रदान की गयी है। उसमें एक वास्तविक शोधात्मक शक्ति प्रदान की गयी है। परसाई जी जनसंवाद ही प्रस्तुत करते है।

परसाई जी ने हमें समाज के सरल किन्तु सत्य ज्ञान को हमारे सम्मुख रखने की कोशिश की हैं, परसाई जी हमारे बीच एक सामान्य जन की भाँति ही रहे है। परन्तु उनकी पैनी दृष्टि से कोई भी पक्ष नहीं बन पाया है। चाहे वह समाज सुधारक हो, राजनीतिज्ञ हो या कोई अन्य समाज का हिस्सा। वे सभी को एक ही लेखनी से लिखते थे। परन्तु उसमें विविधता बहुत थी, स्वातंत्रोत्तर भारत का दर्शन हमें परसाई जी की रचनाओं में होता है। परसाई जी के साथ आप समूचे भारत का दर्शन कर सकते है। परसाई जी की संवेदना सर्वत्र व्याप्त है।

परसाई जी रचनाधर्मिता हमारे लिये संवाद को पुष्ट करने का कार्य करती है इसके द्वारा समाज की कोई भी बात हो प्रत्यक्षतः हमारे दिलों - दिमाग पर छा जाती है।

परसाई जी की रचना का विषय विशिष्ट घटना में नहीं बल्कि रोजमर्रा की घटनायें है। इन्ही मामूली विषयों को लेकर परसाई जी ने अपनी लेखनी उठाई है। यह मामूलीपन नितांत मनो जगत से होता हुआ परसाई जी के चेतना प्रवाह में स्वतः स्फूर्त होकर प्रवाहित होता है। परसाई जी प्रत्यक्ष जीवन से ही साक्षात्कार कराते है। प्रत्यक्ष जीवन जगत की विविधता को सजा संवार कर प्रस्तुत करना ही परसाई जी के रचना कौशल को व्यक्त करता है।

संवेदना, अनुभव, अनुभूति, नैतिकता, भावना रचना का आंतरिक आवरण है किंतु आवश्यक है कि उनका बाह्य आवरण जिसमें लिपटी हुयी पाठकों की विचार क्षमता के सामने प्रस्तुत होती है।

परसाई जी के लेखन में एक विशेषता है कि विद्यागत वैविध्य। उनके लेखन का दायरा इतना विस्तृत है कि उसके उपन्यास, लघुकथा, कहानी, निबन्ध, रेखाचित्र, संस्मरण व स्तंभ आदि कई विधायें शामिल है। एक ही लेखक के लेखन में इतना अधिक वैविध्य सिर्फ परसाई जी के साहित्य में ही दिखाई देता है। उनके साहित्य में राष्ट्रीय महत्व की विचारधारायें होकर भी सामाजिक विसंगतियों के भी दर्शन होते है। उनके व्यंग्य आज के अचूक चित्र भी खींचते है। कई कथाये तो पौराणिक पुट भी लिये हुये है। उनकी निबंध-शैली, निबंधात्मक, विवरणात्मक और विश्लेपणात्मक प्रकृति के है।

परसाई जी के कथा साहित्य की विशेषता यह भी रही है कि उनका साहित्य सदैव ग्रहण करने योग्य ही रहा है। उनका साहित्य प्रत्येक प्रबुद्ध पीढ़ी अपने अतीत के साहित्यकारों के सृजन की प्रारंभिकता पर चिंतन करती है। इस चिंतन के फलस्वरुप रचनाओं में जो शुभ और कल्याणकारी होता है, वहीं अगली पीढी द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है और इसी तरह यह परंपरा चलती रहती है।

गद्य लेखन के क्षेत्र में परसाई प्रेमचंद के बाद के सबसे सशक्त गद्यकार कहे जा सकते है। प्रेमचंद का गद्य, भारतेंदू युगीन और द्विवेदी युगीन गद्य का

परिष्कृत रुप है तो परसाई का गद्य यथार्थवादी गद्य लेखक भारतेंदु, प्रताप नारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त और प्रेमचंद के इस जीवंत जातीय गद्य की ही अगली विकसित कडी है। निराला ने कभी इसी अर्थ में हिन्दी गद्य को ''जीवन संग्राम की भाषा'' कहा था।

परसाई जी के संवाद पक्ष को मजबूती प्रदान कर उनकी भावात्मक वेदना के कारण ही है। वे तटस्थ प्रवृत्ति के आलोचक थे। परसाई के गद्य लेखन की सबसे उल्लेखनीय विशेषता रही है कि उन्होनें भारतेन्दु युगीन गद्य और खासकर व्यंग्यात्मक निबंध लेखन भी श्रेष्ठ परंपरा को नये सिरे से आविष्कृत किया और उनका कलात्मक विकास भी किया।

''प्राप्त और प्रदत्त भाषा को छोडकर आज भारतीय के अन्र्तमन की तकलीफ को उसकी अपनी भाषा में अभिव्यक्ति देने में हरिशंकर परसाई का स्थान महत्वपूर्ण है।'' कबीर, तुलसी, प्रेमचंद, निराला, रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी या मुक्तिबोध की तरह परसाई का भी शष्दलोक कोरा माया दर्पण नहीं है। हिन्दी व्यंग्य की भाषा को सही रास्ता दिखाने में परसाई सक्षम है। यह प्रतिबद्ध व्यंग्य लेखक के नाते उनका कर्तव्य भी था और उसके युग की माँग थी।

परसाई जी का रचना शिल्प :-

स्वातंत्र्योत्तर भारत का दर्शन हमें परसाई जी की रचनाओं मे होता है। परसाई जी की अंगूली पकडकर समूचे भारत का दर्शन किया जा सकता है। परसाई

जी की संवेदना सर्वत्र व्याप्त है। परसाई जी की रचना रोजमर्रा की घटनाये और इन्हीं मामूली विषयों को लेकर परसाई जी ने अपनी लेखनी उठायी है।

परसाई जी ने प्रत्यक्ष जीवन जगत से ही साक्षात्कार कराया है। प्रत्यक्ष जीवन जगत की विविधता को सजा संवार कर प्रस्तुत करना ही परसाई जी के रचना कौशल को व्यक्त करता है। संवेदना अनुभव, अनुभूति, नैतिकता, भावना रचना का आंतरिक आवरण है। परन्तु उसके भाव हमारे समक्ष उस विवरण को पढकर ही सम्मुख हो सकते है। एक वेदना का भाव लेखक के प्रस्तुतीकरण से ही होता है।

रोजमर्रा की घटनाओं को साहित्य से बाहर रखा गया है। उन घटनाओं, स्थितियों की मार्मिकता पर परसाई जी की निगाह गई। परसाई जी का रचना कौशल न केवल सम्बद्ध तरीके प्रस्तुत करता है बल्कि सपाट, सहज एवं सरल भाषा में कही हुई बात को पाठकों के हृदय तथा मस्तिष्क तक पहुँचा देता है। परसाई जी का रचना कौशल पाठकों के मन को ही अभिभूत करता है।

भाषा शिल्प :-

परसाई जी की भाषा अत्यधिक सहज, सटीक एवं नयापन लिये हुये है। वे निराला के बाद दूसरे ऐसे कथाकार रहे है जो समाज से अभिभूत होकर उसका वर्णन करते है। परसाई जी ने अपनी भाषा को टेठ हिन्दुस्तानी परंपरा से जोड़कर हिन्दी को एक नयी दिशा प्रदान की है। परसाई जी की हिन्दी संकुचित

हिंदी नहीं है बल्कि उसमें हिन्दुस्तान का जीवन सौंदर्य एंव संघर्ष मुखरित हुआ है। परसाई जी की हिन्दी मध्यप्रदेश की प्रादेशिकता को नहीं व्यक्त करती है अपितु वह भारत की हिंदी है। इसी कारण उनकी रचनाओं मे ठेठ हिंदी की आवाज गूँजती है।

परसाई जी की भाषा प्रवाह युक्त एवं सरल होती हुयी भी अत्यंत असाधारणतः का बोध कराती है। सहजता, सरलता सर्वत्र ग्राह्य है किंतु परसाई जी की भाषा का चुंबकीय आकर्षण न केवल पाठकों के मन अपितु मस्तिष्क को भी अपनी ओर खींच लेती है।

परसाई जी के लेखन पक्षधरता के समर्थक है। परसाई जी की प्रतिवक्ता सर्वहारा वर्ग के प्रति है। परसाई जी ने सामाजिक व राजनीतिक विसंगतियों का उद्घाटन अत्यंत गंभीरतापूर्वक किया है। उन्होंने देश की गंभीर स्थिति पर तथा नेताओं की स्वार्थपरता पर शोक नहीं बल्कि आक्रोश व्यक्त किया है।

परसाई जी ने जातीय भाषा को अपनाकर अत्यंत सरलता से अधिक गंभीर विषयों का प्रतिपादन किया है। इनका भाषा कौशल उस स्थान पर अपनी विशिष्ट छाप छोड़ता है जहाँ परसाई जी अपनी कहीं हुई बात का समर्थन कराते है और वहाँ अपने विचार, संवेदना, भावना, दर्शन तथा नैतिकता की अभिव्यक्ति करते है।

अध्याय - पंचम

अध्याय-पंचम

(1) परसाई जी का समग्र साहित्य :-

परसाई जी ने पिछले उपन्यासों मे सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक स्थितियों का सूक्ष्म चित्रण किया है। ये चित्र निर्जीव है जबकि इसमें परसाई जी की चेतना सर्वत्र जागृत रही है। इसलिये ये चित्र सजीव बन गये है। उच्च स्तर से लेकर निम्न स्तर तक अधिकतर लोगों का चारित्रिक पतन हो गया है। सामाजिक चारित्रिक पतन पर परसाई जी ने गहरी चिन्ता व्यक्त की है तथा पतनोन्मुख समाज का मार्गदर्शन करने का प्रयास किया है। परसाई जी ने अपने उपन्यासों में पूँजीवादी, सामंतवादी व्यवस्था पर प्रहार किया है। ''रानी नागफनी की कहानी'' में उन्होनें समाज में व्यक्त विद्रुपताओं का उद्घाटन किया है, यद्यपि उपन्यास का ढांचा प्राचीन है किन्तु परसाई जी ने जिन समस्याओं को उठाया है वे आधुनिक है और इसके बीच में संतुलन भी उन्होनें बड़ा ही रोचक बनाया है।

''तट की खोज'' नामक उपन्यास में परसाई जी ने आज की ज्वलंत समस्या को उठाया है। शीला के माध्यम से उन्होनें नारी के प्रति सफेद पोशों के व्यवहार को स्पष्ट किया है। समाज में महेन्द्र जैसे कायर पुरुषों की कमी नहीं है। शीला जैसी कितनी लडकियाँ ''तट की खोज'' में है ? आधुनिक तथा स्वतंत्र लडकियों को कई कठिनाईयों से गुजरना पडता है, परसाई जी ने इसका सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत किया है।

परसाई जी का प्रत्येक उपन्यास या कहानी समाज की विसंगतियों को उजागर करते है एवं समाज को उससे क्या नुकसान हो सकते है, इस बात का चित्रण परसाई जी ने किया है। उन्होनें समस्या के भीतर घुसकर उसके विविध तथ्यों का उद्घाटन किया है। परसाई के उपन्यास न केवल रुचिकर बल्कि पथ-प्रदर्शक भी है। ''फंटासी'' के माध्यम से लिखा हुआ उनका उपन्यास ''नागफनी की कहानी'' आज एक ही उपन्यास समाज का सर्वमुखी आचरण प्रस्तुत करता है। उसमें भारतीय समाज, राजनीति, धर्म का कोई पहलू अछूता नहीं रहा है।

परसाई जी संवेदनशीन कहानीकार है किन्तु यह संवेदना केवल किसी कार्य विशेष के प्रति ही प्रस्फुटित नहीं हुई वल्कि परसाई जी की रचनाओं का दायरा अत्यंत विस्तृत और निस्तीम है। परसाई जी का कथा लेखन मध्यमवर्ग का दर्पण है। परसाई जी के कथा साहित्य में अल्पवर्गीय व्यक्ति अपना ही चेहरा देखता है। जो उसे भिन्न-भिन्न कोणों से दिखाई पडता है। परसाई जी की कहानियाँ यथार्थ परक है। अतः उनके भी अन्तर्विराधों विसंगतियों एवं छल छद्मों के चित्र प्रस्तुत किये गये है। कहीं-कहीं पाठक उस पात्र के बहुत निकट होता है। उस समय पाठकों को आत्मा लोचना की अनुभूति होती है।

''ठंडा शरीफ आदमी'' परसाई जी का एक रेखाचित्र है। इसमें उन्होनें वताया है कि एक साधारण और साधा व्यक्ति इस बेशर्म जमाने में अपने आपको असहज मानने लगता है और कुछ हासिल करने के चक्कर में चाटुकारिता करने लगता है। इसका लाभ अन्य असामाजिक तत्व भी उठाने लगता है।

जब एक साधारण व्यक्ति अपनी महत्वांकाक्षा पूरी नहीं कर पाता है तो वह क्रोधित हो जाता है। और अन्य सीधे व्यक्तियों का भी नुकसान करने की सोचता है। अपने स्वार्थ के पीछे इतना समस्त ठंडा जीवन बिताना उस शरीफ आदमी के ही बस की बात है। परसाई जी कहते हैं कि – सोचता हूँ कि सोचने से आदमी पूरा ठंडा हो जाता है ? जिंदगी में इतनी तरह की आगें है, कहीं कोई गर्मी इसे महसूस क्यों नहीं होती ? जिंदगी की जटिलता को पुल साकर उसनें किस तरह सीधा और सपाट कर लिया है।(1)

परसाई जी ने अपने उपन्यासों व निबंधों में मनुष्य की आकांक्षाओं व उसकी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के बीच की दूरी को देखा है। वे यह भी कहते है कि साधारण मनुष्य भी कभी–कभी इस तरह की उंहापोह में रहता है।

''दो छोटी इच्छायें'' नामक निबंध में उच्च मध्यमवर्गीय व्यक्ति की दंभित महत्वाकांक्षा का वास्तविक चित्रांकन किया गया है। यह ईच्छा 'मैं' की इच्छा न होकर आम आदमी की इच्छा है जो समाज में सम्मान प्राप्त करना चाहते है।

मेरी ऐसी कोई असंभव महत्वाकांक्षा नहीं है। वे इतनी छोटी–छोटी इच्छायें है कि लोग उन्हें महत्वाकांक्षा ही नहीं मानेगें पहली तो यह है कि इन्कम टैक्स दूँ और दूसरी यह कि चेक काटूँ।(2)

---

(1) परसाई रचनावली से उदधृत पृ. सं. 30

(2) परसाई रचनावली : छोटी–छोटी प्रेरणायें से उदधृत पृ. सं. 133

'गली तो चारो बंद हुई' नामक निबन्ध में भी मध्मम वर्गीय यथार्थ की सफल अभिव्यक्ति हुई है। मकान मालिक, साहूकार से बचने के अभिनयात् व्यक्ति अंदर में आहत होता है तथा टूट जाता है। परसाई जी ने इनके दुःख-दर्द को अन्दर से महसूस किया है।' [1]

अगर आदमी सुबह तीन मंजिला मकान बनवा रहा हो, पूरा बन चुना हो, सिर्फ रंगाई-पुताई रह गयी हो, इसी समय अगर मकान मालिक आकर भगा दे, तो तिमंजिला मकान एक क्षण में ध्वस्त हो जाये, चाहे नींद हराम हो, पर आदमी को अपने सामने बरबाद नहीं होने देना चाहिये। परसाई जी ने मध्यमवर्गीय परिवार की इच्छाओं और आकांक्षाओं के प्रति हमें अवगत कराया है। वे कहते है कि सपने देखना और उनका टूटना मध्यमवर्गीय परिवार की नियति है। सपनों में जीने वाला मध्यमवर्गीय वार-वार यथार्थ के धरातल पर फेंक दिया जाता है। ''कचहरी जाने वाला जानवर'' में भी परसाई जी ने मध्यमवर्गीय व्यक्ति की सही स्थिति की विवेचना की है। मंहगाई, भ्रष्टाचार से त्रस्त व्यक्ति को कचहरी का भी चक्कर लगाना पड़ता है यह कितना दुखदायी किंतु कटु यथार्थ है।

''मैं आज उन दार्शनिकों से पूरी तरह सहमत हूँ जो कहते है कि जीव को संसार में दुःख भोगने के लिये भेजा जाता है और जिन दुःखों को भोगना जरुरी है उनमें सबसे बड़ा दुःख कचहरी जाना है। [2]

---

(1) *परसाई रचनावली : टेलीविजन की हाय-हाय से उदघृत पृ. सं. 155 (भाग-3) में।*
(2) *परसाई रचनावली : कचहरी जाने वाला जानवर से उदघृत पृ. सं. 206 उद्घृत।*

परसाई जी द्वारा सामाजिक विकृतियों का वर्णन भी अपनी रचनाओं में यत्र-तत्र किया गया है। ''निंदारस कबिरा आप ठगाइये'', ''स्नान'' और ''पगडंडियों का जमाना'' आदि रचनाओं में विभिन्न प्रकार के चरित्रों का उद्घाटन किया गया है।

''निंदारस'' एक मनोवैज्ञानिक व्यंग्य प्रधान रचना है। ''कुछ लोग बड़े निर्दोष मिथ्यावादी होते है, वे आदतन, प्रकृति के वशीभूत झूठ बोलते है उनके मुख से निष्प्रयास, निष्प्रयोजन झूठ ही निकलता है ।[(1)]

समाज में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो निंदक भी है और निन्दा करने वाले लोगों को भी रखते है। निन्दा का उद्गम ही हीनता और कमजोरी से होता है। मनुष्य अपनी हीनता से दवता है वह दूसरों की निन्दा करके ऐसा अनुभव करता है कि वे सब निकृष्ट हें और वह उनसे अच्छा है। उसके अंत की इससे संतुष्टि होती है।

पीढियों का संघर्ष हमेशा समाज के लिये एक समस्या रही है। परसाई जी इसके लिये नयी और पुरानी दोनों पीढ़ियों को बराबर जिम्मेदार मानते है। एक पीढ़ी कर्म क्षेत्र से दूर होती है, तो पुरानी पीढ़ी इस अंक में पर्दापण करती है। आवश्यकता इस बात की है कि कोई पुरानी पीढ़ी को निरर्थक व निष्क्रिय मानकर उसकी अवहेलना न करें और उसके अनुभवों का लाभ उठाये। पुरानी पीढ़ी कभी

---

(1) *परसाई रचनावली : निन्दा रस से उदधृत पृ. सं. 29*

नयी पीढ़ी को अपने समय की दुहाई दे-देकर अनुभवहीन न समझे। उनका कहना है - ''हर चादर मैली है, पहले मूरख मैली करता था, अब बुद्धिमान करता है।''(1)

परसाई जी का मानना है कि दोनों ही पीढ़ी के लोग आपसी तालमेल से इस संसार पर अपना राज कर सकते हैं। वे पारस्परिक वैमनस्य को भुलाकर भाई चारे के साथ कार्य करने की सलाह देते हैं।

उनका कहना है कि समाज में सभी बुद्धिवाले लोग रहते है। सभी के विचार अलग-अलग है। उनकी सोच में भी अंतर है। समाज में वह शक्ति आनी चाहिये कि सामाजिक मिथ्यावाद, असामाजिक कृत्य और समाज के लिये हानिकर कर्मो का विरोध कर सकें।

परसाई जी की अपनी शैली है। कोई भी विरासत से मिली रचना, विधि उन पर हावी नहीं हो पाती। कहानी और निबंध सभी क्षेत्रों में परसाई जी ने बने-बनाये सांचे को तोड़ा है। एक जगह साहित्य सृजन में बने-बनाये सोच के बारे में परसाई कहते है ''सांचे में सुलीता होता है, सुनार को सोचने का काम नहीं करना पड़ता। सांचे में नुकसान भी है एक किस्म का माल ढलता है, कारीगर की प्रतिभा व्यर्थ चली जाती है। बदलती जनरुचि उसी के माल को कुछ दिनों बाद नापसंद करने लगती है।''(2)

---

(1) ''परसाई रचनावली'' से उदघृत पृ. सं. 208

(2) ''परसाई रचनावली'' से उदघृत, संपादक डॉ. कमला प्रसाद पृ. सं. 311

वे कहते थे कि जो जीवन की पूरी गहराई में उतरे बिना, जन-जीवन से सीधा और संवेदनात्मक संपर्क किये बिना ही साहित्य रचना करते है और ऊपर से उसे यथार्थवादी नहीं कहते है, वे प्राणहीन साहित्य हो सकते है। इसमें मानवीयता और भावना कहीं दिखाई नहीं देती। जीवन तत्व का नाम नहीं होता।

परसाई जी का कहना है कि यदि रचनाकार समय के साथ चल न सके तो अपनी रचनायें दूसरों पर थोपकर उनका वक्त बर्बाद न करे, जो आगे जाते है, उन्हें आगे जाने दें। जो दूसरों की उन्नति नहीं देख सकते, वे समाज में आदर भी नही पाते।

साहित्य में बुढापा सफेद बालों या झुर्रियों का काम करती है। साहित्य में बुढापे का अर्थ है नवीन चेतना ग्रहण करने की शक्ति का लोप। एक परिपक्व साहित्यकार अपने साहित्य-सृजन के लोगों को नयी दिशा देता है किन्तु जो झुक गये है, वे साहित्य की प्रगति की राह में रोडे बनकर, अड़कर खडे हो जाते है। अतः ऐसे लोगों को साहित्य की राह छोड़ देना चाहिये।

''मैं ''शाश्वत साहित्य रचना का संकल्प लेकर लिखने नहीं बैठता। जो अपने युग के प्रति ईमानदार नहीं होता, वह अनन्तकाल के प्रति कैसे हो लेता है, मेरी समझ से परे है।[1]

---

(1) परसाई रचनावली, संपादक कमला प्रसाद, पृ. सं. 140

परसाई जी ने फंटेसी की भाँति ही अपनी रचनाओं को नयी दिशा दी है। वे सदैव वास्तविकता के नजदीक रहे और नवीनता का सृजन करते रहे। इसका प्रमुख कारण है कि वास्तविक के बिना फंटेसी का अस्तित्व ही संभव नहीं। यह वास्तविकता और कल्पना के बीच में आवाजाही करती है। एक ऐसी कल्पना को वास्तविक से अधिक वास्तविकता का आभास देती है।

परसाई जी का कहना है कि ''फंटेसी मुझसे सधती है, मेरा बहुत कुछ सोचना फंटेसी में होता है। मैं अब कोशिश कर रहा हूँ कोई लंबी फंटेसी लिखूँ।

परसाई जी ने अपनी रचनाओं ''मैं'' की व्यापकता को अधिक विस्तृत किया है। इनके साथ' मुक्तिबोध'' जी भी है जिन्होनें इसका प्रयोग पूरी रचनात्मक मर्यादा के साथ किया है। हम नाटक में अभिनेता को नहीं बल्कि उसके माध्यम से प्रस्तुत होने वाले अभिनय को देखते है। उसी तरह यहाँ ''मैं'' के माध्यम से एक पूरे सामाजिक अनुभव से हमारा आमना-सामना होता है। (1)

''मैं'' परसाई जी की रचनाओं मे ''मैं'' केवल लेखक का चिंतन ही नहीं बल्कि वह एक सक्रिय पात्र है वह हवा की भाँति परसाई जी के समूचे रचना संसार में व्याप्त है। परसाई जी का ''मैं'' निहायत अपरिभाषित पात्र है। ''मैं'' कुछ भी कर सकता है। वह कोई भी और कहीं भी हो सकता है। परसाई का ''मैं'' बहुआयामी है।

---

(1) डॉ. वर्मा धनंजय, ''परसाई का प्रथम पुरुष'', से उदधृत, पृ. सं. 26

परसाई जी के व्यंग्यों में आधुनिक जीवन की विडंबनाओं को स्पष्ट करने वाली मिथक योजना में और फैंटासियाँ भी मिलती है। परसाई ने मिथक और फंटासी को स्वच्छंदतावादी व्यक्तिवादी की मनोगत धारणाओं से मुक्त किया है। उन्हें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आकार प्रदान किया है।

परसाई जी ने अपनी व्यंग्य दृष्टि से समाज के साथ-साथ देश की आर्थिक व्यवस्था पर भी अपना ध्यान लगाया है। उन्होनें सदैव समाज के साथ राष्ट्रहित में अपने संदेश दिये है। उनका कहना है कि व्यक्ति समाज का प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिये लाखो रुपये लगा देता है। अपने देश की ''आर्थिक परिस्थितियों से अनभिज्ञ वह घी, दूध, दही, पानी की तरह बघता है, उसे यह नहीं मालूम कि उसके देश का अर्थमंत्री तमाम दुनियाँ में हाथ फैलाये भीख माँग रहा है।'' (1)

दूसरी ओर वे कहते है कि ''तुम दो-तीन लाख रुपये बर्बाद न करके समाज के हित में लगाओ। अस्पताल खुलवा दो, भिखारियों के सोने के लिये सराय बनवा दो। शिक्षा संस्था खुलवा दो। उपाधि चाहे जो ले लो, सारे समाज से आरती उतरवा ले ..... पर देश का धन बर्बाद न करें। घी को आदमी के पेट में जाने दें, रथ के पहिये में न डाले।'' (2)

---

1) ''परसाई रचनावली'', पृ. सं. 41 से उदधृत।
2) ''परसाई रचनावली'', पृ. सं. 46 से उदधृत।

परसाई जी का धर्म मानवीयता के धरातल पर खड़ा है, वे मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ मानते है। जो धर्म मनुष्य की अवहेलना करे वह धर्म है ही नहीं, ढोंग है। इसी संदर्भ में उन्होनें कहा भी है। ''मनुष्य से बड़ा कोई धर्म नहीं है। मनुष्य का जिससे कल्याण होता है वह धर्म है जो मनुष्य का हित करता है वही साधु है।[1]

शिक्षा के मामले मंत्रियों द्वारा तय करने के बाबत् परसाई जी कहते है ''और एक विचित्र बात है। हमारे यहाँ भाषा और साहित्य के मामले भी मंत्रियों द्वारा तय होते है। भाषा या लिपि के निर्णय विशेषज्ञ नहीं लेते, मंत्रिगण बैठकर तय कर लेते है। इन मंत्रियों को शिक्षा, साहित्य और भाषा के विषय में कितना ज्ञान है, यह कोई बताने की बात नहीं है। ''हमारी हर वस्तु का भाग्य विधाता, राज पुरुष और राज नेता है, सर्वज्ञ है।''[2]

परसाई जी ने आर्थिक व्यवस्था के साथ–साथ समाज का इस पर प्रभाव को भी बताया है। इस अव्यवस्था के लिये परसाई जी कहते है – ''चूहों ने सड़कर हर जीवन दायिनी चीज को प्राणघातक बना दिया है। चूहों ने मेरे ही नहीं, सारे देश के में गेहूँ को मार डाला है। ये चूहे खाद्य–व्यवस्था के बोरे में घुसकर कहीं मोटे हो गये और मर गये और सडकर सारी व्यवस्था को नष्ट कर दिया। अन्न सब दफन कर दिया गया। हमें सिर्फ सडांघ का अनुभव हो रहा है।''[3]

---

(1) ''परसाई रचनावली'', पृ. सं. 359 से उदघृत।
(2) ''परसाई रचनावली'', पृ. सं. 151 से उदघृत।
(3) ''परसाई हरिशंकर'', 'पगडंडियों का जमाना' पृ. सं. 57 से उदघृत।

परसाई जी का कहना है कि हम लोग दुनियाभर की उदारता और वसुधैव कुंटुंबकम् का नारा लगाते है किन्तु अपने सामाजिक और पारिवारिक परिवेश में इतने संकीर्ण हैं कि हमारी नयी पीढ़ी अंदर ही अंदर घुटन महसूस करने लगी है। घुटन में विकृति और रुग्णता आती है।

परसाई जी कहते है कि ''समाज में वह शक्ति आनी चाहिये कि समाजिक मिथ्यावाद, असामाजिक कृत्य और समाज के लिये हानिकारक कार्यो का विरोधकर सकें। तुम्हारे प्रधानमंत्री ने अभी उस दिन कितने दर्द से कहा था कि धन–धान्य की बर्बादी मत करो, देश पर संकट आया है।'' (1)

परसाई जी के व्यंग्य में तीखापन होने के साथ–साथ राजनीतिक प्रेरणा को भी महत्व दिया गया है। वे सामाजिक षडयंत्रों के प्रबल विरोधी थे उनका मानना था कि भारत की भोली–भाली जनता को किसी प्रकार से छलना, देशद्रोह से कम नहीं है।

''मैं शाश्वत साहित्य रचने का संकल्प लेकर लिखने नहीं बैठता। जो अपने युग के प्रति ईमानदार नहीं होता, वह अनन्तकाल के प्रति कैसे हो लेता है, मेरी समझ से परे है।(2)

उनका मानना था कि वास्तविक रचयिता वही है जो समाज से वास्तविक रुप से जुड़ा होता है और उसकी ही व्याख्या करता है। वह समाज का एकाकी

---

(1) परसाई हरिशंकर, 'अरस्तु की चिटठी' पृ. सं. 51 से उदघृत।
(2) परसाई हरिशंकर, 'रानी नागफनी की कहानी' पृ. सं. 60 से उदघृत।

संवाददाता भी है। हरिशंकर परसाई जी को उन लोगों से सख्त नफरत है जो मध्यमवर्गीय परिवार से संबद्ध होकर भी उच्चवर्ग का दिखावा करते है और सर्वहारा वर्ग को उसके साथ होने का झूठा विश्वास भी दिलाते है। वे एकपक्षीय वार्ता पक्षकार न होकर द्विपक्षीय वार्ता को प्रमुख समर्थन देते है।(1)

परसाई जी ने अपनी व्यंग्य रचनाओं में जीवन के हर पहलू को, समाज के हर कोने को निशाना बनाया है, उनका व्यंग्य लेख जितना विशाल है, उतनी विविधतापूर्ण उनकी शैली भी है। कहीं विशुद्ध फैंटेसी है तो कहीं पौराणिक कथाओं का नवीनीकरण है। परसाई अपनी सूक्ष्म पैनी दृष्टि के लिये चर्चित रहे है। उनकी भाषा साधी और कहने का ढंग बडा आकर्षक है। डॉ. कृष्ण कुमार सिन्हा के अनुसार ''सीधी-सीधी भाषा में वक्रता उत्पन्न करना असाधारण साधना की अपेक्षा रखती है और इस दिशा में परसाई अद्वितीय है। .... उनका हर शब्द व्यंग्य का पुट लिये रहता है।(2)

परसाई जी की भाषा एवं लेखन शैली साधारण तो दिखाई देती है परन्तु उसके व्यंग्य विधा बडी ही तीव्र है जो कि हमेशा किसी न किसी प्रकार से कटाक्ष करती ही है चाहे सीधी भाषा में हो अथवा टेडी भाषा में, हमारे बीच रहकर भी वे असाधारण से प्रतीत होते है। परसाई जी का संस्करण हमारा पथ-प्रदर्शन भी है और हमेशा वे ही एक नयी राह दिखलाता है।

---

1. परसाई हरिशंकर, 'एक मध्यवर्गीय कुत्ता' पृ. सं. 161 से उदधृत।
2. तिवारी, बालेन्दु शेखर 'हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य' से उदधृत पृ. सं. 204

(2) परसाई जी का व्याख्यान :-

परसाई जी का कथा साहित्य अत्यन्त विस्तृत है। उन्होनें न केवल उपन्यास, कहानी लिखे है बल्कि पत्र-लेखन, संपादकीय, साहित्य चर्चा, लघुनाटक, किंचित निबन्ध, टिप्पणी, संस्मरण, लेख, भाषण व वक्तव्य भी प्रस्तुत किये है। परसाई जी का व्यक्तित्व बहुआयामी है। परसाई जी ने वैसे कहानियाँ एवं टिप्पणियाँ अधिक लिखी है, उनके उपन्यास काफी कम है लेकिन वे सभी प्रसिद्ध है।

इस तारतम्य में हम उनके व्याख्यानों पर एक दृष्टि डालते है तो पाते है कि उनके विचारों में नाना प्रकार की क्रान्ति दिखाई देती है।

जवलपुर में आयोजित तार-यान्त्रिक कर्मचारी संघ के 8वें परिमंडल अधिवेषण में उनका स्वागत भाषण अधिक चिंतनीय है। ''मैं खुद श्रमजीवी लेखक हूँ। कलम का मजदूर हूँ इस कारण मैं आपका साथी हूँ और आपके वर्ग का। इस नाते में कामना करता हूँ कि आप अपने दिमाग से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करें, अपने अधिकारों के लिये संघर्ष करने का संकल्प करें और देश की परिवर्तनशील व्यापक परिस्थिति में अपनी भूमिका तय करें।

मैं लेखक हूँ, जिसके अनुभव और चिंतन का दायरा व्यापक होता है, इसलिये एक-दो बातें आप लोगों से कहूँगा जिनपर भी आप लोग विचार करें। श्रमिक संगठन का प्रधान उद्देश्य श्रमिकों के हितों की रक्षा करना होता है, और

होना भी चाहिये, लेकिन इसके साथ ही मेरा विचार है कि श्रमिक संगठनों को अपने चरित्र और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में अपनी प्रमुख भूमिका का अहसास होना चाहिये।

श्रमिक संगठन सिर्फ पैसे की लड़ाई लडते है, अर्थवाद के चक्कर में पडे है और अर्थवाद बहुत घातक चीज है। केवल अर्थवाद से श्रमिकों की शक्ति न विकसिक होती और न तैयार होती है। एक देशव्यापी संघर्ष की आवश्यकता है जो व्यवस्था को बदल कर परिवर्तन करें।

इस अर्थवाद के पैसावाद के बहुत बुरे नतीजे हमारे सामने है। कर्मचारी केवल अपने अधिकार जानता है, अपने कर्तव्य नहीं जानता। वह समाज के प्रति अपना दायित्व न समझता है, न निभाता है जबकि सारे लाभ वह इसी समाज से चाहता है, जिसमें पैसा भी शामिल है।

सार्वजनिक क्षेत्र के कारखानों में घाटा ही घाटा होता है। प्रायवेट कारखानों में मुनाफा ही मुनाफा। दूसरे कई कारण हैं। मैनेजमेंट योजना की गलती, राजनैतिक हस्तक्षेप, गलत प्लानिंग आदि। मगर हमें इसे मानने में शर्म नहीं आनी चाहिये कि उद्योगों के श्रमिक काम नहीं करते, लापरवाही करते है, उत्पादन को अपना लक्ष्य नहीं मानते। प्रायवेट कारखाने का श्रमिक ऐसा करें तो निकाल दिया जाये मगर इन सार्वजनिक उद्योगों का कर्मचारी संस्पेंड किया जाये तो वह दिल्ली अपने नेता के पास पहुँच जाता है और दिल्ली वाले नेता मंत्री से बात करके उसे वहाल करा देते है।

श्रमिक को शिक्षित और चेतना संपन्न होना चाहिये। उसका सरोकार देश की दूसरी समस्याओं से भी होना चाहिये। श्रमिक संगठनों को इन चीजों पर भी विचार करना चाहिये विदेश में सांप्रदायिकता बढ़ रही है। विघटनकारी प्रवृत्तियाँ सिर उठा रही है, क्षेत्रवाद बढ़ रहा है।

हम पूछते हैं मजदूर बस्ती में साम्प्रदायिक दंगा क्यों नहीं रोका जा सकता। जमशेरपुर में अचानक साम्प्रदायिक दंगा हुआ था जिसमें एक लेखक गमी अनवर शांति के लिये गांधी चौक में उपवास करते मारा गया था। हम इस पर नहीं रोते कि लेखक को क्यों मारा ?

हम जानते है कि फासिस्टों नें दुनिया भर में सबसे पहले लेखकों, कवियों और कलाकारों को मारा है, क्योंकि वे मानवतावाद के प्रचारक होते है। आपके मजबूत संगठन है मगर दंगा होने पर उसे रोक क्यों नहीं पाते आपने साम्प्रदायिक नफरत पनपने क्यों दी ? मैं पूछता हूँ, ऐसे मौके पर आप निकम्मे और असहाय क्यों हो सकते थे। क्यों आप वह ताकत पैदा नहीं करते जो ऐसी वारदातों को रोक सके ?

आप क्यों नही मजदूर को शिक्षित करते ? क्यों नहीं उसे सांप्रदायिकता से लडने के लिये तैयार करते ? क्यों नही श्रमिक संगठन को आप समाजघाती ताकतों से लड़ने के लायक बनाते ? यह कहने की बात नहीं चलने वाला कि हम क्या करें ? हम हेल्पलेस हो गये है।

मगर फिर दंगों के बाद बोनस के लिये दोनों संप्रदाय के मजदूर भाई-भाई बनकर हाथ में हाथ डालकर जुलूस निकालते है। मैं आप लोगों से कहना चाहता हूँ, मजदूर बस्तियों में मजदूरों के बीच दंगे एक योजना के हिसाब से कराये जाते है। वे अक्समात नहीं होते। वे मजदूरों में फूट डालने के लिये कराये जाते हैं। आप लोग जरूर इस पर सोचते होगें, मुझे विश्वास है। मेरा कर्तव्य आपको याद दिलाने का था, क्योंकि नेतृत्व आपका मध्यम वर्ग करता है।

यासिर अराफात बेरुत से विदा :-

यासिर अराफात आखिर कड़े सुरक्षा प्रवन्ध में बेरुत छोड़ गये। लेबनान के ईसाई खुश थे। मगर कहते थे - हम चाहते थे, यह आदमी 'काफिन' (शव पेटी) में यहाँ से जाता। लेबनान के ही नागरिक खलील जिब्रान थे और उन्हें देश निकाला हुआ था। ईसाइयों की फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन से लड़ाई पुरानी है। असल में लेबनान एक ऐसा देश है जहाँ कोई भी अपनी प्रायवेट फौज बनाकर कभी भी लड सकता है। लेबनान की फौज तो है ही। मुस्लिम फौज है, क्रिश्चियन मिलिशिया है और पी. एल. ओ. अभी तक वहाँ था। असल में ईसाइयों की लड़ाई इतिहास के अनुसार यहूदियों से होनी चाहिये। मुसलमानों से भी ईसाइयों की लडाई का एक इतिहास है। अभी भी अधिकांश सम्पन्न देश अमेरिका या ब्रिटेन के प्रभाव में है। ब्रिटेन को दूसरे महायुद्ध के बाद अपना साम्राज्य छोड़ना पड़ा।

यह जगह जो खाली हुई इसमें अमेरिका घुस पडा और 19वीं शताब्दी के ब्रिटेन का रोल करने लगा। दूसरे महायुद्ध के बाद अमेरिका नव साम्राज्यवाद का रुप ब्रिटिश साम्राज्यवाद से भिन्न है। ब्रिटेन की तरह अमेरिका किसी देश या क्षेत्र पर कब्जा करके वहाँ शासन नहीं चलाता, वह डालर और हथियार का साम्राज्यवाद चलाता है, वह डालर की मदद और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के द्वारा दुनिया के अविकसित और विकासशील देशों पर आर्थिक प्रभुत्व स्थापित करता है, उनकी अपनी अर्थव्यवस्था को नष्ट करता है, विकास को अवरुद्ध करता है। साथ ही वह हथियारों की मदद से हर क्षेत्र में अपने पिट्ठू देश बनाता है और क्षेत्रीय लड़ाईयाँ कराके अमेरिका प्रभुत्व कायम करता है।

ब्रिटेन, फ्रान्स क्योंकि वैसे शक्तिशाली नहीं रहे इसलिये वे अपनी ओर से आरम्भिक कार्यवाई न करके अक्सर अमेरिकी कार्यवाही का समर्थन करते है। फिलिस्तीनियों के मामलों में वे नरम और सहानुभूति का रुख भी अपना लेते है, मगर अमेरिका ने हमेशा से इजराइल को मदद देकर और प्रोत्साहित करके अधिक–से–अधिक जंगखोर बनाया। मगर वहाँ धीरे–धीरे यहूदी फासिस्ट हो गये, नाजीवाद की तरह जियनवाद फासिस्ट कार्यवाइयाँ करने लगा। दुनिया में फैले यहूदी पूँजीपतियों ने यहाँ धन झोंकना शुरु कर दिया। अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रान्स में यहूदी पूँजीपतियों का बहुत आर्थिक और राजनैतिक प्रभाव है। वे उद्योगपतियों

का बहुत आर्थिक और राजनैतिक प्रभाव है। वे उद्योगपति है, व्यापारी है। उनके बैंक है, अर्थव्यवस्था पर एक हद तक उनका कब्जा है, प्रशासन में यहूदी प्रभावकारी स्थानों पर है। हेनरी किसिंगर यहूदी है। अमेरिका में बैकों पर यहूदियों का कब्जा है। अमेरिका को अपने हितों की रक्षा के लिये एक आतंकवादी पिट्टू देश चाहिये था। सो उसने इजराइल को गोद लिया। उसे धन, हथियार और तकनीकी सहायता दी। यहूदियों ने फिलिस्तीनियों को अपने देश से निकाला, वहाँ इजराइली शासन कायम किया।

फिलिस्तीनी अपनी मातृभूमि से हटाये गये है। एक पूरी कौम है जिसकी अपनी भूमि नहीं है। अरब देशों का हाल यह है कि उनमें लोकतन्त्र नहीं है, या राजशाही या मुल्लाशाही है। दूसरे अधिकांश देश अमेरिका प्रभाव में हैं, उसके पिट्टू हैं। तेल के कारण सम्पन्न ये अरब आलसी और अय्याश है। तकनीक में पिछड़े है। ये लडाकू नहीं है। इन देशों में आपस में लडाई चलती रहती है।

फिलिस्तीनियों का मुक्ति संगठन पिछले कई वर्षो से लेबनान की भूमि से अपने देश की मुक्ति की लडाई लड रहा था। इस बार इजराइल ने फिलिस्तीनियों को लेबनान से खदेड़ देने की सघन कार्यवाही की। इनकी फौजी अड्डों पर ही नहीं, नागरिक बस्तियों पर भी बम और राकेट बरसाये। बिना अमेरिकी प्रोत्साहन और समर्थन के इजराइल ऐसी कार्यवाही नहीं कर सकता। विश्व-जनमत

इजराइल की इस कार्यवाही पर क्षुब्ध और क्रुद्ध हुआ। अमेरिका को पहिली बार न्यायपूर्ण रुख अपनाने का नाटक करना पडा। भारत शुरु से ही फिलिस्तीनियों का समर्थक रहा है। पण्डित जवाहरलाल नेहरु ने फिलिस्तीनियों की भूमि की माँग को जायज माना था और उन्हें मदद देने का आश्वासन दिया था। नासिर और नेहरु फिलिस्तीनियों को उनकी भूमि वापस दिलाने के लिये राष्ट्रसंघ और बाहर लगातार जूझते रहे। पर नेहरु, जैसे चीनी हमले के तीन साल बाद मर गये, वैसे ही नासिर 1967 के इजराइली हमले के ठीक तीन साल बाद मर गये।

भारत में फिलिस्तीनियों के लिये बहुत समर्थन और सहानुभूति है। इन्दिरा सरकार ने पी.एल.ओ. को मान्यता दी है। यासिर अराफात भारत आ चुके है और उन्हें किसी राष्ट्र के प्रधानमन्त्री या राष्ट्रपति जैसा सम्मान दिया गया है। राष्ट्रसंघ में पी.एल.ओ. को प्रतिनिधित्व दिलाने में भारत का बड़ा योगदान है। भारत ने इजरायल को मान्यता नहीं दी है, उससे हमारा कोई कूटनीतिक सम्वन्ध नहीं है और केवल एक इजराइली व्यापारिक प्रतिनिधि वम्वई में रहता है। मगर पूर्व जनसंघ और अब भारतीय जनता पार्टी और लोकदल के दक्षिणपन्थी प्रतिक्रियावादी, जैसे मोरारजी भाई और सुब्रह्मण्यम स्वामी, इजराइल समर्थक है। ये एक तो अमेरिका समर्थक है, दूसरे पी.एल. वामवन्थी और रुस समर्थित है। भारतीय जनता पार्टी की नाराजगी का एक बड़ा कारण यह भी है कि वे मुसलमान है। जनता पार्टी सरकार के विदेशमन्त्री अटलबिहारी वाजपेयी ने इजराइल को मान्यता देने की कोशिश की थी पर विदेश मन्त्रालय की सलाह पर उन्हें यह इरादा छोड़ना पडा।

दुनिया के न्यायप्रिय और स्वाधीनता समर्थक लोग फिलिस्तीनियों के लिये दुखी है। हर न्यायप्रिय और स्वाधीनता प्रेमी को उन्हें समर्थन देना चाहिये। उन्हें उनकी भूमि दिलानी चाहिये। वे फिर लडेगें। वे दृढ निश्चयी है।

गुटनिरपेक्ष सम्मेलन ! कुछ प्रश्न :-

मुझे दुख है कि पाँव में विशेष तकलीफ के कारण मैं स्वयं इस अवसर पर उपस्थित नहीं हो सकता। मित्रों का आग्रह है कि गुटनिरपेक्ष आन्दोलन और विशेषकर इस सम्मेलन के सम्बन्ध में मैं जो सोचता हूँ और जो सवाल मेरे मन में उठते हों, उन्हें आपके सामने पढे जाने के लिये लिख दूँ। मैं ऐसा कर रहा हूँ।

महीने-भर से देश के उद्योगपतियों के अखबारों में लेख, कालम और सम्पादकीय टिप्पणियाँ छप रही है कि गुटनिरपेक्ष आन्दोलन, जिसका नेता भारत मान लिया गया है, रुस का पक्षधर हो गया है, इस हद तक कि यह आन्दोलन सोवियत रुस के प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार है, या रुस के इशारे पर चलता है और इस तरह ये देश दोनों महाशक्तियों में से एक यानी रुस के साथ हो गये है और वास्तविक गुटनिरपेक्षता अब नहीं रही। ये पत्र और ये स्तम्भ-लेखक हमारे जाने हुये है - ये सिद्धान्तः रुस विरोधी है, साम्यवाद विरोधी है और भारत की विदेश नीति के आलोचक रहे है। भारत में यह अमेरिका और पश्चिमी यूरोपीय प्रोपेगेण्डा का प्रतिबिम्ब और विस्तार है।

विचारणीय यह है कि अमेरिका और सोवियत संघ का रुख इस आन्दोलन के प्रति क्या है ? दूसरे महायुद्ध की समाप्ति के 4--5 साल बाद की यह बात है जब अमेरिकी प्रशासक, जो विश्व-राजनीति में नये, नौसिखिये थे, ब्रिटिश साम्राज्यवाद का स्थान खुद भरने की सोच रहे थे। तटस्थता का अर्थ उनके लिये यह था जैसे उनके स्वाभाविक साम्राज्य का कोई देश उससे अलग हो गया हो । अमेरिका रुस विरोधी अपनी विश्वव्यापी व्यूह-रचना में एशिया, अफ्रीका लेटिन अमेरिका के इन देशों को शामिल करना चाहता था। वह इन्हें अंगरेजी साम्राज्यवादियों की तरह अपना बाजार बनाना चाहता था। संयुक्त राष्ट्रसंघ में इन्हें अपने साथ रखना चाहता था। इन देशों की अर्थव्यवस्था पर अपना नियन्त्रण चाहता था। गुटनिरपेक्षता के एक आन्दोलन का रुप लेने तथा लगातार इसमें नवस्वतन्त्र देशों के शामिल होते जाने से, अमेरिका का वह इरादा नाकाम हो गया। राष्ट्रसंघ में इन देशों के लगभग तीन-चौथाई अमेरिका के साथ मतदान नहीं करते। अमेरिकी शासक इसे 'ब्लाकवोटिंग' का नाम देकर कई बार इसकी आलोचना कर चुके है।

रुस, स्टालिन की सत्ता के समय से ही इस आन्दोलन को समर्थन देता रहा है। एक आवश्यक और बड़ी शक्ति माना गया और इस आन्दोलन की रुस पूरी तरह मदद करता रहा है। इनका रुस की विचारधारा और विश्व की वर्तमान स्थिति में व्यावहारिक कूटनीति है जिसका प्रथम उद्देश्य और सबसे बड़ा लक्ष्य विश्वशान्ति है। अमेरिकी और रुसी आर्थिक सहायता में भी फर्क है – अमेरिका

जहाँ आर्थिक मदद देकर किसी देश की अर्थव्यवस्था को अपने ऊपर निर्भर रखना चाहता है, वहीं रुस आर्थिक और तकनीकी मदद देकर उस देश को आत्मनिर्भर बनाना चाहता है। हमारे देश में अमेरिकी और सोवियस रुस दोनों की मदद से बड़े कारखाने खुले है। इनमें कार्यरत इन्जीनियरों से पूछ लिया जाय। वे बताते है कि रुसी विशेषज्ञ सारी तकनीक भारतीयों को सिखा देते है जबकि अमेरिकी विशेषज्ञ तकनीक अपने पास गुप्त रखते है और हमें सिखाते नहीं। इस तरह की नीति ये अमेरिका और रुस हर विकासशील देश में अपनाते है। इन विकासशील देशों पर दबाव डालकर अमेरिका पड़ोसी देश से स्थानीय लड़ाई कराता है, जिससे उसकी युद्ध सामग्री बिके जबकि रुस इनके विवाद को बातचीत से हल करने की कोशिश करता है। अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ इतनी शक्तिशाली है कि अमेरिकी शासन उनके इशारे पर चलता है। इन कम्पनियों के व्यापार और मुनाफे के लिये दूसरे देशों में अमेरिका हस्तक्षेप, राजनैतिक दखलन्दाजी, षडयन्त्र करता है, यहाँ तक कि हिंस्त्र तरीके से वहाँ राजसत्ता पलटता है।

एक बात की ओर मैं ध्यान और खींचना चाहता हूँ। ये गुटनिरपेक्ष देश हथियारों के सबसे बड़े खरीददार है। ये हथियार अमेरिका से भी खरीदते है और रुस से भी। मगर फर्क है। अमेरिका में हथियारों का उत्पादन प्राइवेट कम्पनियों के हाथ में है। उत्पादकों को उपभोक्ता चाहिये। हथियार कोई कपड़ा नहीं है, जिसका सूट उपभोक्ता पहिन ले। युद्ध-सामग्री के उपभोक्ता तब मिलते है, जब युद्ध की स्थिति हो। युद्ध हो ही जाय, तो हथियारों की बिक्री बेहिसाब होती है

जैसी ईरान–ईराक–युद्ध में हो रही है। दोनों देश अमेरिकी हथियार बेहिसाब खरीद रहे है। रुसी अर्थव्यवस्था हथियारों की बिक्री पर आश्रित नहीं है, जबकि अमेरिकी व्यवस्था काफी हद तक है। ये जो विकासशील देश हथियार खरीदते है इनसे वे महाशक्तियों से नहीं लड़ सकते। फिर ये किस लिये हथियारों का भण्डार करते है ? मसलन पाकिस्तान क्यों हथियारों का भण्डार कर रहा है। रुस से वह लड़ नहीं सकता, क्योंकि चन्द घण्टों में उसकी बरबादी हो जायेगी। फिर हथियार किससे लड़ने के लिये ? निश्चित ही आपस में लडने के लिये। याने गरीब देश अमेरिका से आर्थिक मदद या कर्ज लेगा और उससे अमेरिका के ही हथियार खरीद लेगा। यानी कर्ज लेकर भी न उत्पादन होगा, न विकास होगा। गुटनिरपेक्ष देशों को कोई ऐसी विधि खोजनी ही पड़ेगी, जिससे सहायता और कर्ज की यह धनराशि हथियारों पर बरबाद न हो, बल्कि उत्पादन में लगे। इस सन्दर्भ में इन्दिरा ने लीक से हटकर, सार्वजनिक रुप से सम्मेलन का उद्‌घाटन करते हुये ईरान–ईराक से युद्ध बन्द करने की अपील की है, वह महत्वपूर्ण है। इससे आपसी विवादों को युद्ध के द्वारा सुलझाने की प्रक्रिया शुरु होगी।

एक और बात जरुरी है। इन देशों में आपसी सहयोग से अपनी एक स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था स्थापित हो। इसके परिणाम अच्छे होगें। एक तो इनमें कोई देश महाशक्तियों के दबाव में नही आयेगा, दूसरी ओर एक–दूसरे के उत्पादन की खपत की सम्भावना बनेगी, तीसरे विकासशील देशों Protectionism की नीति के दुष्परिणामों से बचा जा सकेगा।

विश्वशान्ति को निर्गुट देशों ने अपना प्रमुख लक्ष्य माना है। युद्ध न हो, यह सब चाहते है। मगर यह भी जरूरी है कि युद्ध की तैयारी भी न हो। युद्ध की तैयारी के चक्कर में छोटे-छोटे गरीब देश भी पड़े है, जिनकी विश्वयुद्ध में कोई भूमिका नहीं होगी। मगर वे अपने धन का अधिकांश अपने लोगों के रोटी-कपड़े के बजाय बारूद में खर्च कर रहे है। ऐसे में इनकी गरीबी कभी नहीं मिटेगी। इस तैयारी में धन की बरबादी और युद्ध की मानसिकता को रोकने के लिये इन देशों की जनता की शान्ति-आन्दोलन तीव्र करना चाहिये।

मेरा खयाल है, रुस का समर्थन गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को कुछ सिद्धान्तों और शुभ लक्ष्यों को लेकर है। एक लक्ष्य है - विश्वशान्ति और दूसरा, जनता की गरीबी मिटाना। अगर इस कारण एक पक्ष और उससे मुखपत्र यह कहते है कि इस आन्दोलन का झुकाव रुस की तरफ है, तो इन देशों को संकोच करने या कैफियत देने की कतई जरूरत नहीं है, याने Apotogetic नहीं होना चाहिये। जो ऐतिहासिक शक्तियाँ इस समय काम कर रही है, उसकी यह तार्किक, स्वाभाविक और निर्णायक परिणति है।

शिक्षकों का आन्दोलन :-

मध्यप्रदेश के गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के बोर्ड से असहयोग आन्दोलन को लेकर सरकारी प्रवक्ता तथा सरकारी नीति के अन्धसमर्थकों द्वारा तरह-तरह के भ्रम फैलाने का प्रयत्न किया जा रहा है। शिक्षकों के इस आन्दोलन को 'असामयिक' और 'जल्दबाजी' का निर्णय कहकर आम

जनता को उनके विरुद्ध यह नारा लगाकर उभारने की कोशिश हो रही है कि इस आन्दोलन से मेट्रिक के 25 हजार विद्यार्थियों का भविष्य खतरे में हो गया है।

इस सम्बन्ध में सबसे जानने योग्य बात यह है कि असहयोग का यह कदम जल्दबाजी में कदापि नहीं उठाया गया। इसके पहिले सरकार के मन्त्रियों, बोर्ड के मालिकों, एम.एल.ए.गण, नेतागण सबके पास असंख्य अपीलें भेजी गयी हैं, अनेक बार प्रतिनिधि मण्डल मिले है, अधिकारियों के द्वारों पर सैकडों सिजदे किये जा चुके है।

विद्यार्थियों के भविष्य का नारा सुनने में जितना अच्छा लगता है, उद्देश्य उसका उतना ही घृणित है। यह नारा लगाकर सरकार सारी जिम्मेदारी शिक्षकों पर फेंककर खुद साफ बच निकलना चाहती है। पर क्या इस देश के विद्यार्थियों के प्रति सरकार की कोई जिम्मेदारी नहीं है ? क्या विद्यार्थियों से उसका केवल इतना ही प्रयोजन है कि उनके अभिभावकों से उसे 'वोट' मिले ? क्या यह उसकी जिम्मेदारी नही है कि शिक्षकों को अच्छा वेतन और अच्छी नौकरी की शर्तें मिलें, ताकि वे अच्छी शिक्षा दे सकें ? 8 साल हो गये पर शिक्षकों की दशा वैसी ही दयनीय है ! सरकार का ध्यान देश की शिक्षा की ओर बिल्कुल नहीं है। जब सरकार अपने वचनों का पालन नहीं कर सकती, तब शिक्षकों को इसके सिवा कौन सा मार्ग है कि वे प्रतिकार के लिये शान्तिपूर्ण आन्दोलन करें ? इस एक साल के समय में अगर सरकार समझौता नहीं कर सकती थी तो कम-से-कम परीक्षा

का प्रवन्ध तो कर सकती थी। सरकार के पास असीम शक्ति है – जन और धन की ! उसमें सरकारी कर्मचारियों की सेवाएं लेकर मैट्रिक की परीक्षा तो करवा ही दी।

इस बीच में विधानसभा में मध्यप्रदेश के वित्तमन्त्री ने एक बहुत अनुत्तरदायित्वपूर्ण और द्वेष भरा वक्तव्य दे दिया। उन्होनें कहा कि कोड को लागू करना सरकार की नैतिक जिम्मेदारी नहीं है। हम चकित रह गये यह पढकर। सरकार द्वारा पास किये गये एजुकेशन एक्ट के अंश को कार्यान्वित करने की जिम्मेदारी सरकार की नहीं तो वह कानून क्यों बनाती है। कोई भी जिम्मेदारी सरकार क्या इस तरह अपने ही नियमों की धज्जी उडाती है। हमें लगता है कि वित्तमंत्री ने सन्तुलन खो दिया है और अनाप-शनाप कहना शुरु कर दिया है और इस अनाप-शनाप के पीछे से सत्ता का दम्भ बोलता है। सरकार को इस बात पर लज्जा आनी चाहिये कि उसके राज्य में एक ही प्रकार का काम करने वाले, एक ही योग्यता के सरकारी और गैर-सरकारी शिक्षकों के वेतन में अन्तर है। सरकार के शब्दों में एक विश्वास ही भरोसे की, ईमानदारी की शक्ति रहती है। पर जब मन्त्रीगण इन प्रश्नों पर भाषा का ऐसा ढीला प्रयोग करते है तब हम शिक्षकों को ही उनके लिये लज्जित होना पडता है। महत्वपूर्ण जनहित के मामलों में इस प्रकार के कथन कर देना प्रजातन्त्र के मन्त्रियों को शोभा नहीं देता। तानाशाह ऐसा करते है।

बात यह है कि सरकार ने इस प्रश्न को प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया है – याने नागरिकों को अधिकारों से वंचित करना ही प्रतिष्ठा का प्रश्न बनने लगा है। और इसी में सरकार की सारी शक्ति लगी है। शिक्षकों से समझौता न कर सकना सरकार के दम्भ और हठ का परिणाम है।

सरकार को यह समझना चाहिये कि शक्ति के भय से किसी भी वर्ग को भूखा मार सकना सम्भव नहीं है। सरकार ने शिक्षकों के साथ बड़ा धोखा किया है, फरेब की नीति का अनुसरण किया है, जो सरकारों को शोभा नहीं देता। और अब वित्तमन्त्री सरकारी विधि को लागू करना नैतिक जिम्मेदारी ही नहीं मानते। न जाने कहाँ से ये लोग शब्दों के अर्थ पढ़कर आते है – कौन–सा शब्दकोष है वह ?

साम्प्रदायिकता ! प्रकृति, कारण और निदान :--

हैदराबाद में साम्प्रदायिक दंगे के दौरान प्रसिद्ध तेलुगू कवि गुलाम यासीन, उनकी पत्नी और बच्ची को दंगाईयों ने मार डाला। इस पर तीव्र प्रतिक्रिया हुई। गुलाम यासीन प्रगतिशील कवि थे, वे शान्ति और साम्प्रदायिक सद्भाव के लिये जीवनभर काम करते रहे। दंगे के दौरान भी वे साम्प्रदायिक सद्भाव कायम करने की कोशिश कर रहे थे।

4 साल पहले जमशेदपुर के दंगे में प्रसिद्ध उर्दू लेखक जकी अनवर की हत्या विशिष्ट परिस्थितियों में हुई। उन्होंने मुसलमानों के मुहल्ले में अपने मकान को बेचकर हिन्दुओं के मुहल्ले में मकान खरीदा और वहाँ रहने लगे। उन्होंने इस

मुहल्ले का नाम 'गाँधी नगर' रखा। उनका विश्वास था कि हिन्दू और मुसलमान की मिली-जुली आबादी होनी चाहिये। इसके बिना साम्प्रदायिक सद्भाव पैदा नहीं होगा। दंगे के दौरान उन्हें सलाह दी गयी कि वे मुसलमानों के मुहल्ले में चले जायें या पटना चले जायें। पर वे वहीं रहे और अपने एक मित्र वर्मा के साथ साम्प्रदायिक शान्ति के लिये अनशन पर बैठे। 13 घण्टों बाद उन्हें अनशन खत्म करने पर मजवूर होना पडा। रात को जकी अनवर मार डाले गये और उनकी लाश कुएँ में डाल दी गयी।

लेखक का दंगे में मारा जाना विशेष अर्थ क्यों रखता है ? यह स्वाभाविक है कि लेखक साम्प्रदायिक हैवानों का शिकार हुआ, तो हम उसकी बिरादरी के लेखक उद्वेलित होगें, इस कृत्य की निन्दा करेगें। यह हमने किया। इन दो लेखकों की हत्या इसलिये भी ज्यादा दर्दनाक है कि दोनों का विश्वास, प्रगतिशील जीवन-मूल्यों में था, दोनों साम्प्रदायिक भाईचारे के लिये प्रयत्नशील थे। जकी अनवर ने तो शान्ति के लिये अनशन किया था। उसने अपने एक दोस्त को लिखा था - मेरा विश्वास है कि इन्सानियत अभी मरी नहीं है।

लेखक का मारा जाना समाज के लिये विशेष अर्थ क्यों रखता है ? इसलिये कि लेखक मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिये लिखता है, मानव-संस्कृति की रक्षा के लिये लिखता है, मानवजाति के उज्जवल भविष्य के सपने देखता है,

जीवन के प्रति आस्था और श्रद्धा उत्पन्न करता है, भावनाओं का उदारीकरण करता है, एक बेहतर मनुष्य बनाना और न्यायपूर्ण समाज–व्यवस्था स्थापित करना चाहता है।

जहाँ तक हम लेखकों का सवाल है, हमें हाय–हाय करने की कतई जरुरत नहीं। हमें दया भी नहीं माँगना है। स्त्री–बच्चे मार डाले जायें और लेखक छोड़ दिया जाय, यह शर्मनाक माँग हमारी कल्पना के परे है। इतिहास से हमने सीखा है कि लेखक, कलाकार के साथ ऐसा होगा ही और पहले होगा। इसे हम 'पागलपन', 'उन्माद', 'सिरफिरापन' जैसी नासमझी के अर्थहीन निर्दोष शब्दों से परिभाषित नहीं करते। हम इसे सीधा 'फासिस्टवाद' कहते है, जो संगठित, सुनियोजित अमानवीयता, वर्बरता है। इसका पहला हमला उन पर होता है जो मानवीयता का सन्देश देते हैं।

कुछ कटु पर सत्य वास्तविकताओं को स्वीकार करना होगा। अभी भी हिन्दू मन में एक विजित जाति की हीनता की भावना है। मुसलमान में भी यह भावना है कि हम विजेता जाति के है और हमनें इन पर हुकूमत की है। हिन्दू और मुसलमान दोनों पर अंगरेजों ने हमला किया। दोनों पर हुकूमत की। अंगरेज ईसाई हैं। उन्होंने हिन्दू–मुसलमान दोनों पर अत्याचार कम नहीं किये। मगर अंगरेजों से न हिन्दू नफरत करता न मुसलमान। स्वतन्त्र भारत का सबसे पहला गवर्नर जनरल ईसाई अंगरेज था। इसे हिन्दू–मुसलमान दोनों ने सलाम किया।

हारे हुये निराश हिन्दू मन ने अपने प्राचीन गौरव की याद की, उसका सहारा लिया और उस 'यूटोपिया' में जीकर, आधुनिकता का विरोध किया। उसने पुरातनवाद में जातीय गौरव की रक्षा खोजी। इस भावना ने उसे संकीर्ण, ज्ञान--विज्ञान विरोधी, अतीतजीवी और क्षुद्र बनाया। वह हीनता की भावना से ग्रस्त हुआ, तो उसे भी इस्लामी अतीत की याद आती कि उसने यूरोप और एशिया को रौंद डाला था। इस्लामी विरादरी की याद आयी। वह भी बुनियादी इस्लाम में पहुँचा और 7वीं सदी के मक्का-मदीना में रहने लगा।

हिन्दू-मुसलमान दोनों के रहनुमा बनने वाले आधुनिकता-विरोधी मगर अमेरिका-समर्थक है। दोनों अपने अतीत की संस्कृति और सभ्यता के कारण और उसी हथियार से आधुनिकता रोकना चाहते है। इसका कारण यह है कि आधुनिकता केवल पश्चिमी यूरोप और अमेरिका की नहीं है। आधुनिकता के रास्ते आगे निकल गये है और समाजवाद तक पहुँच गये है। यह समाजवादी खतरा है सामन्तवाद और पूँजीवाद के लिये। यह वह मुद्दा है जहाँ हिन्दू साम्प्रदायिक और मुस्लिम साम्प्रदायिक नेता एक दूसरे के गले में हाथ डाले है। दोनों सामन्तवाद, पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के समर्थक है -- चाहे वह आर. एस. एस. हो चाहे जमाइते इस्लामी, चाहे हिन्दू महासभा, चाहे मुस्लिम लीग।

सामन्तवाद-पूँजीवादी की समर्थक ये धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एजेन्सियाँ कैसे साम्प्रदायिक मनोभावना को बनाये रखती है, उसे बढ़ाती है और

जव जरुरत होती हैं विस्फोट करा देती हैं । एक तो जातीय स्मृतियाँ होती है जो दीर्घकालिक होती है । इन्हें जिन्दा रखा जाता है । फिर इतिहास का 'हेंगओवर' होता है ।

मध्ययुग का गलत साम्प्रदायिक इतिहास ही वह जहर है जिसने साम्प्रदायिक द्वेष को जीवित रखा है। इतिहास विज्ञान है। कल्प-कथा नहीं है। जब तक वैज्ञानिक दृष्टि से धार्मिक द्वेष से मुक्त, तथ्यपरक इतिहास नहीं पढाया जायेगा, तब तक साम्प्रदायिक द्वेष जा नहीं सकता। मगर जब भी इस तरह के इतिहास को लिखने और पढ़ने का प्रयास किया जाता है, वही सामन्तवादी-पूँजीवादी ताकतें उसे रोक देती हैं। यदि साम्प्रदायिकता को खत्म करना है, तो नये सिरे से इतिहास लिखना, पढना और पढाना पड़ेगा। यही नहीं, भाषा और साहित्य की पाठ्य-पुस्तकों से भी साम्प्रदायिक रचनाएँ निकालनी होगी। उत्तर भारत में स्कूलों में पढाई जानेवाली हिन्दी भाषा की पाठ्य-पुस्तकें देखिए। इनमें रचनाओं का चयन साम्प्रदायिक दृष्टि से किया जाता है।

एक कारण, और प्रमुख कारण आर्थिक है। नौकरियाँ, धन्धे, प्रापर्टी के मामले में जब हिन्दू-मुसलमान-स्पर्धा और झगडा होता है, तो उसे साम्प्रदायिक रूप दे दिया जाता है। मुसलमानों की यह शिकायत सही है कि उन्हें नौकरियों में वहुत कम प्रतिशत दिया जाता है। दंगे भी राजनैतिक-आर्थिक कारणों से होते है, धार्मिक कारणों से नहीं।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उसकी राजनैतिक मोर्चा भारतीय जनता पार्टी निराश, त्रस्त हिन्दू मानस को यह बताते है कि इस दुर्गति का कारण मुसलमान है, यह शासन है, ये कण्ट्रोल है, ये कम्युनिस्ट है, यह लोकतान्त्रिक व्यवस्था है। हिन्दू को सुख–समृद्धि केवल हिन्दू राष्ट्र में मिलेगी जो प्राचीन धर्मादशों के अनुसार चलेगा। इस आशा में हिन्दू मानस के लिये आकर्षण है।

इसी तरह मुसलमानों के साम्प्रदायिक नेता, जैसे जमाइते इस्लामी और जमाइते तुलबा के लोग मुसलमानों को समझाते है कि इस दुर्गति का कारण इस्लाम का कमजोर होना है। इस्लामी हुकूमत के बिना खुशहाली हो नहीं सकती। ये नेता जानते है कि मुसलमान यह विश्वास करेगा नहीं कि भारत में इस्लामी हुकूमत कायम हो जायेगी।

मैं चाहता हूँ, एक बात पूरी तरह साफ समझ ली जाये। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भारतीय जनता पार्टी को केवल साम्प्रदायिक कहकर टालना ना समझी है, अपने आपको धोखा देना और लोकतन्त्र को खतरे में डालना है। ये फासिस्ट ताकतें है जो नाजीबाद के तरीके पर चल रही है। ये फासिस्टी हिन्दू राष्ट्र की स्थापना करना चाहती है और इनका समझौता अमेरिकी साम्राज्यवाद से है।

जमाइते इस्लामी और इत्तेहादे–मुसलमान भी फासिस्ट है ये भी खतरनाक है।

देश की राजनैतिक पार्टियों की, जो खुद धर्मनिरपेक्ष है, यह बेईमानी है कि वे इस या उस बहाने से भारतीय जनता पार्टी और केरल की मुस्लिम लीग से समझौता कर लेती है। वामपन्थी पार्टियाँ भी इस पाप से बरी नहीं है। बहुत अच्छी बात अभी यह हुई है कि दोनों कम्युनिष्ट पार्टियों ने भारतीय जनता पार्टी से समझौता नहीं करने का तय किया है और उसे राजनैतिक अछूत बना दिया है।

इस खतरनाक हद तक साम्प्रदायिकता को बढ़ने देने की जिम्मेदारी बहुतों पर है। बहुत बड़ी जिम्मेदारी राजनैतिक पार्टियों के दोगलेपन पर है।

हमारे भाई पत्रकारों ने भी यही किया। पत्रकार भी लेखक है। वे हमसे अधिक ताकतवर है। हमारा लिखा उपन्यास, कहानी, निबन्ध तो लम्बे अरसे में प्रकाशित होता है और इने-गिने लोग उसे पढ़ते है। मगर अखबार तो रोज सुबह आदमी के हाथ है। जनमत पत्रकार बनाते है। पर अशिक्षित, अर्द्धशिक्षित विश्वासहीन, निष्ठाहीन, विचारहीन, गैर जिम्मेदार इन पत्रकार बुद्धिजीवियों ने ज्यादातर साम्प्रदायिक भेद और उन्माद पैदा किया। ये पत्रकार साम्प्रदायिकता से नहीं लड़ते। तथ्य जनता को नहीं बताते। जनता को विवेक नहीं देते। साम्प्रदायिक पार्टियों के और साम्प्रदायिक जहनियत के अखबार तो यह करेगें ही। मगर उदार तथा धर्मनिरपेक्ष अखबार भी साम्प्रदायिकता फैलाते है।

फिर मोटी तनख्वाह पाकर विश्वविद्यालयों और कॉलेजों के महान् बुद्धिजीवी आचार्यगण – इन्हें 'नाटो' और 'वारसा' सन्धि-शक्तियाँ समझ में

नहीं आती, ब्राम्हण और कायस्त गुटों का शीत और गर्म युद्ध समझ में आता है। ये इसी विश्वयुद्ध को लडते रहते है। इनका कोई सम्पर्क इस देश की जनता से नहीं होता। इन्हें कोई चिन्ता इस देश की नहीं है। ये खुद दकियानूस, पुरोगामी अन्धविश्वासी होते है। ये राजनैतिक, सामाजिक समझ से शून्य होते है। इतिहास पढाते है पर ऐतिहासिक शक्तियों को नहीं समझते। विज्ञान पढाते है मगर खुद अवैज्ञानिक दृष्टि रखते है। कोई सामाजिक दायित्व ये नहीं समझते।

सुविधाभोगी, कायर, अवसरवादी लेखक, पत्रकार, अध्यापक, बुद्धिजीवी वर्ग ने इस देश और उसकी जनता के साथ बडा धोखा किया और करते जाते है।

इतना सब लिखने से यह अर्थ न निकाला जाय कि हालत कावू से बाहर हो गयी है। सब कुछ हारा जा चुका है। ऐसा कतई नहीं। मैनें स्थितियों का विश्लेषण किया है, तथ्य-अन्वेषण किया है और प्रवृत्तियों की सही पहचान बताकर सही नाम दिये है। निराशा की कोई वात नहीं है। आशा के लक्षण ज्यादा दिख रहे है। एक वहुत अच्छी बात तो यह हुई कि वामपन्थी नेतृत्व में वामपन्थी लोकतान्त्रिक मोर्चे वन रहे है, जिनसे साम्प्रदायिक दल दूर रखे गये है। इससे साम्प्रदायिक राजनीति बहिष्कृत अछूत की तरह हो गयी। हमें विश्वास है कि वामपन्थी लोकतान्त्रिक दलों की यह एकता कायम रहेगी। सामान्य जनता मे भी राजनैतिक

समझ वढी है और वह साम्प्रदायिक गिरोहों के चक्कर में नहीं आती। इस देश का आदमी वैसे भी परम्परा से और संस्कृति से उदार, सहनशील, लोकतान्त्रिक और लोकमंगल की भावना से युक्त है।

बहुत बड़ी आशा की बात यह है कि पिछले 5-6 सालों में प्रगतिशील विश्वासोंवाले लेखक सक्रिय और संगठित हुये है। अनगिनत नये तरुण लेखक प्रगतिशील संगठनों से सम्बद्ध हुए है और वे न केवल लेखन में बल्कि सामाजिक क्षेत्र में भी प्रगतिशील चेतना का प्रसार कर रहे है। राजनैतिक संगठनों से ज्यादा प्रगतिशील लोकशिक्षण इस समय लेखक कर रहे है। मैं व्यक्तिगत अनुभव से जानता हूँ कि किस तरह शहरों और कस्बों के केन्द्र में चिपकायी गयी पोस्टर कविता हजारों लोग पढ़ते है, सोचते है और शिक्षित होते है। यह सिर्फ एक उदाहरण मैंनें दिया है। लेखक को अब सक्रिय भी होना है, 'एक्टिविस्ट' होना है। उसे संगठित होना है। यह लड़ाई इस देश में है। यह वास्तविक है। इससे मुँह नहीं मोड़ा जा सकता। समझौता करनेवाले कर लें और 'धिक्कार' के बीच गर्व से जियें। मगर वास्तविक लेखकों को यह लड़ाई लड़ना है। इतिहास में ऐसी लड़ाईयाँ हो चुकी है और जीत हमारी ही हुई है। फज के शब्द कहूँ -

यूँ ही हमेशा उलझती रही है जुल्म से खल्क
न उनकी रस्म नयी है न अपनी रीत नयी
यूँ ही हमेशा खिलाये है हमने आगे में फूल
न उनकी हार नयी है न अपनी जीत नयी।

परसाई जी का कथा साहित्य जन साधारण के काफी निकट है और जनसाधारण को शीघ्र समझ में आने वाला है। वे कहते है कि जो भी बात कहनी हो वह सहज व सरल भाषा में होनी चाहिये, भले ही उसकी शब्द-क्रिया कठिन हो। इसलिये उन्हें आम जनता का जन-लेखक कहा जाता है।

परसाई जी का कथा साहित्य विविधता लिये हुये भी है। उन्होनें उपन्यास, गद्य-साहित्य, कहानियाँ, निबन्ध, व्याख्यान, एकाकी व घटकों के रुपान्तर भी लिखे है। परन्तु सभी में विशेषता है कि वे सभी समाज की किसी न किसी विसंगति से सम्बन्धित रहते है।

उनका साहित्य समाज की विसंगति को परिलक्षित करने वाला होता हैं। उनके व्याख्यान भी किसी न किसी समाज पर ही होते है चाहे वह अपने देश का हो अथवा देश से सम्बन्धित बाहरी हो। उन्होंने मजदूरों से लेकर देश के प्रधानमन्त्री एवं उनके विचारों को भी अपने उपन्यासों व व्याख्यानों की पृष्ठभूमि बनाया है, यही कारण है कि देश की समस्त परिभाषा व समस्यायें उनके उपन्यासों व कहानियों में परिभाषित होती है।

परसाई जी की रचनाओं में समकालीन, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक स्थितियों एवं घटनाओं का वास्तविक स्वरुप सामने आता है। सत्य तो यह है कि जिस प्रकार प्रेमचंद की रचनायें स्वतंत्रतापूर्व भारत का इतिहास है, उसी प्रकार परसाई जी की रचनायें स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् के भारत का इतिहास है।

परसाई जी ने अपने व्याख्यानों व स्तम्भों में रोजमर्रा की घटनाओं का जिक्र किया है। रोजमर्रा की घटनाओं का अवलोकन अन्वेषक दृष्टि का माध्यम से ही संभव है। परसाई जी की अवलोकन क्षमता अद्भुत है, उनकी अन्वेषक दृष्टि। यही अन्वेषक दृष्टि मामूलीपन को विशिष्ष्ता का दर्जा प्रदानं करती है।

....

अध्याय - षष्ठम

अध्याय-षष्ठम

उपसंहार :-

परसाई जी के चिंतन में समाजवाद का पुट सदैव ही रहा है। वे जनलेखक के रुप में ही हमारे सम्मुख उपस्थित रहे है। परसाई जी के उपन्यास व कहानियाँ हमारे लिये समाजवाद की पथप्रदर्शक रही है। समाज की व्यवस्था एवं उसकी मानसिकता को परिवर्तन की जरुरत है वे कहते है कि समाज में व्याप्त विसंगतियों को समाजवादी सोच के माध्यम से ही परिवर्तित करना होगा। समाज की अव्यवस्था को दूर करने के लिये सामान्यजन को सजग करते हुये परसाई जी कहते हं – अव्यवस्था को दूर करने के लिये ठोस कदम उठाना होगा। मात्र भाषणों, लेखों और सर्कुलरों से समाज की स्थिति नहीं सुधर सकती। इसके लिये समाज की व्यवस्था में आमूल परिवर्तन लाना होगा। विना व्यवस्था में परिवर्तन किये भ्रष्टाचार के मौके बिना खत्म किये और कर्मचारियों को विना आर्थिक सुरक्षा दिये, भाषण, सर्कुलरों, सदाचार समितियों, निगरानी आयोगों द्वारा कर्मचारी सदाचारी न होगा।

उनका मानना है कि हम स्वयं अपने लिये और परिवार के लिये ही व्यवस्था पर निगरानी रखाते है ऐसा नहीं होना चाहिये, हमें स्वयं के साथ-साथ समाजवादी प्रक्रिया को भी देखना चाहिये। समाज हमारा अपना है उसे परिपूर्ण बनाने की परिकल्पना भी हमारी ही होना चाहिये। यदि ऐसा नहीं हुआ तो विचार भले ही हमारे हो परन्तु व्यवस्था भंग होकर अन्य किसी के मुताबिक ही चलती रहेगी।

हमारी संस्कृति का मूलमंत्र है – ''सर्वे भवन्तु सुखिनः'' प्रत्येक भारतीय की कामना होती है कि समाज में सभी का कल्याण हो, सभी समृद्ध हों, सुखी हो, किन्तु आज हमारी यह सामाजिक भावना खत्म होती जा रही है।

उनका चिन्तन हमारा पथ प्रदर्शक है और रहेगा। परसाई जी ने सदैव 'वसुदैव कुटुंबकम्' के लिये कहा है। हमारे सामाजिक व पारिवारिक परिवेश इतने संकीर्ण है कि हमारी नयी पीढी अंदर ही अंदर घुटन महसूस करने लगती है। घुटन में विकृति और रुग्णता आती है। हमारी दोनों ही पीढियाँ संघर्षशील रहती है। पुरानी पीढी नयी पीढ़ी को चेतावनी देती है और नयी पीढी पुरानी पीढ़ी की समझदारी अपनाना नहीं चाहती। आज आवश्यकता इसी बात की है कि कोई पुरानी पीढ़ी को पुरानी निरर्थक व निष्क्रिय मानकर उसकी अवहेलना न करें और उसके अनुभवों का लाभ उठायें।

परसाई जी ने अपनी रचनाओं, भाषणों व वक्तव्यों के माध्यम से हमारी पीढी को चेतना दी है और एक नयी प्रेरणा प्रदान की है। उनका मानना है कि रचनाकार जमाने के साथ चले आपने विचारों को थोंपे नहीं, बल्कि दूसरों के विचारों को भी अपने इस नवीन विचारों के साथ मिलायें। जो आगे बढना चाहते है, उन्हें आगे लाने दें, वक्त फालतू बर्बाद न करें।

''साहित्य में वुढापा सफेद बालों या झुर्रियों का नाम नहीं है साहित्य में वुढापे का अर्थ है नवीन चेतना ग्रहण करने की शक्ति का लोप।'' [1] अपनी मान्यताओं

---

(1) डॉ. व्यास, मदालसा, 'हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई' से उदधृत पृ. सं. 46

और मूल्यों को बदलने की भीकता, आज के बदले कल के जीने का मोह, प्रतिभा का आज के शैथिल्य यह सब न हो तो साहित्य में बूढा आदमी परिपक्व कहलाता है।

अपनी अनुभवशीलता और समझ के माध्यम से ही व्यक्ति समाज को एक नयी राह दिखलाता है। उसका अपनत्व एवं विकास दृष्टि से ही वह पथप्रदर्शक बनता है।

परसाई जी द्वारा सभी विधाओं में अपनी पारंगलता सिद्ध की गयी है। चाहे वह उपन्यास हो, कहानी हो, अपना कोई टिप्पणी या आलोचना, वे सभी में समान रुप से हिस्सेदारी रखते है। ''मैं शाश्वत साहित्य रचने का संकल्प लेकर लिखने नहीं बैठता। जो अपने युग के प्रति ईमानदार नहीं होता, वह अनंतकाल के प्रति कैसे हो लेता है, मेरी समझ से परे है।''[1] परसाई जी समाज की समस्याओं से अनभिज्ञ नहीं बल्कि ईमानदार व जागरूक है।

परसाई जी ने फेंटेरी के माध्यम से वास्तविकता को दर्शाया है। लोक कल्पना का इस्तेमाल होने के कारण फेंटेसी लोक जीवन के चित्रण में अधिक सहायक है। और कभी-कभी यथार्थ को पूरी ईमानदारी से व्यक्त करते है। समाज की यथार्थशीलता के दर्शन हम परसाई जी की रचनाओं के माध्यम से कर सकते है।

परसाई जी ने अपनी व्यंग्य रचनाओं में जीवन के हर पहलू को, समाज के हर कोने को निशाना बनाया है। उनका व्यंग्य क्षेत्र जितना विशाल है, उतनी

---

(1) ''मेरी प्रसिद्ध रचनायें'' : हरिशंकर परसाई से उद्धृत पृ. सं. 65

विविधतापूर्ण उनकी शली भी है। परसाई ने मिथक और फेंटासी को स्वच्छतावादी, व्यक्तिवादी की मनोगत धारणाओं से मुक्त किया है। उन्हें सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक आधार प्रदान किया है। इस प्रकार से मिथ और फेंटासी को प्रासंगिक बनाया है।

अपनी वैविधापूर्ण शली से उन्होंने सम्पूर्ण विश्व की समस्याओं को हमारे सम्मुख लाने का प्रयास किया है। परसाई जी ने अपनी लेखनी में समाज के प्रत्येक पहलुओं का वर्णन किया है।

समाज की इस व्यवस्था को द्वंद्वात्मकता कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। स्वतंत्रता के बाद वर्ग वैषम्य बढा ही है, कम नहीं हुआ है। परसाई जी जैसा साहित्यकार जो कि मानवता से सरोकार रखने वाला इस तरह का अन्याय नहीं देख सकता। परसाई जी एक शोषणविहीन समाज की कल्पना करते है।

परसाई जी ने एक नये बुद्धिवादी पाठक वर्ग का निर्माण किया है और सामान्य पाठक को अपनी प्रतिबद्धता तय करने वाला तथा परिवेश के प्रति जागरुक रहने की तमीज प्रदान की है।

परसाई जी ने अपनी स्वच्छंदता के कारण ही समाज में अपना स्थान बनाया है। उन्होंने कहानी के साथ-साथ निबन्ध श्रेणी में भी अपनी जगह बनायी है। "यद्यपि उन्होंने राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक सभी विषयों पर निबंध लिखे

फिर भी सबसे अधिक राजनैतिक पृष्ठभूमि के ही निबन्ध है। इस जनतांत्रिक देश राजनीतिक दृष्टि ही आम आदमी की भाग्य विधाता है।'' (1)

परसाई जी का लेखन यथार्थ लेखन है और उन्होंने यथार्थ के धरातल पर ही रहकर समाज की कल्पना की है। वे हमारे सम-सामयिक गद्यकार है और समाज की परिकल्पना इन्होंने विसंगतियों को दूर रहकर ही है। कहानी के बने हुये ढांचे को तोडकर परसाई जी ने कहानी के संस्कार और संस्कृति को बदला है। अपने देश और अपने समाज में ठीक वर्तमान में जो कुछ घटा रहा है। वह परसाई जी की कहानियों में बखूबी की देखा जा सकता है। उनकी शैली तीखी होने के बावजूद उनकी कहानियाँ खरी है।

परसाई जी की कहानियों में नवीन परिवेश के साथ-साथ पुरानी विचारधाराओं को भी यथावत स्थान दिया गया है। परसाई जी ने कुंठाओं, संभास और विसंगतियों के विरुद्ध अपनी आवाज को सुदृढ किया है वह सदैव ही मानवीय और नैतिक विचारधारा के पक्षकार रहे है। मानवीय और नैतिक सरोकार जो परसाई जी की कथाओं में है वह शायद ही अन्यत्र ही कहीं कहानियों में दिखाई देता है। नयी कविता के समान है ललित निबन्ध और नयी कहानी के शब्द के रुप में परसाई जी का स्थान सर्वोपरि है।

मानवीयता की रक्षा के लिये समाज के दबे ढंके-पाखण्ड को खोलने के लिये एकमात्र व्यंग्य ही कारगर हथियार साबित हो सका है। इसीलिये प्रहलाद

---

(1) डॉ. व्यास मदालसा, 'हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई' से उदधृत पृ. सं. 168

अग्रवाल ने कहा है कि ''हिन्दी कहानी की संपूर्ण रचना–प्रक्रिया व्यंग्य संबंधित हो उठी है। यह व्यंग्य पूर्ण भंगिमा परिवेश के हास्यास्पद वातावरण से ही प्रादुर्भूत है। इस घिनौने जीवन के प्रति व्यक्ति का मूल आक्रोश उभरकर तीखे और कड़वे व्यंग्य में ढल गया ह।[1]

परसाई जी की कहानी में व्यवस्था के प्रति आक्रोश है। उनकी कहानियों में आज के हिंदुस्तान की सही तस्वीर देखी जा सकती है। उनमें उनके जीवन–दर्शन और एक व्यापक विश्व–दृष्टि है।

उन्होनें मनुष्य की मुक्ति और मानवीय मूल्यों की स्थापना की कोशिश की है। परसाई जी की कहानियों की एक विशेषता और है कि उन्होनें जन–जीवन में प्रवेश कर लिया है। इसलिये वे सामान्य जनता के चारो ओर की विसंगतियों से भिज्ञ है। जिस वर्ग में उनके पात्र गढे जाते है, परसाई उनमें उसी वर्ग के अनुकूल भाषा में बात करते है। आज के वर्तमान समय की देशी तस्वीर उनके कथानक में कूट–कूट कर भरी है। उनकी कहानियाँ पढते समय पाठक, दर्शक और उसके अनुभवों का भोक्ता भी बन जाता है। यही कारण है कि परसाई जी के कहानी व उपन्यास दोनों ही लोकप्रिय हो उठे है।

परसाई जी के पात्र भी प्रेख्त की तरह बौद्धिक और नैतिक विवेक से युक्त है। प्रेख्त अपने पात्रों के प्रति दया या करूणा का भाव उत्पन्न करते उसी प्रकार

---

(1) अग्रवाल, प्रहलाद : हिन्दी कहानी सातवाँ दशक से उदधृत पृ. सं. 78

परसाई की असहाय होने पर भी दया की भीख नहीं माँगते। जिस तरह मुक्तिबोध ने कविता में मिथक और फैंटेसी का प्रयोग किया है। आज परसाई की कहानी ने समीक्षा के नये मापदण्ड की आवश्यकता का अहसास करा दिया है।

कहानी और उपन्यास के साथ-साथ परसाई जी का स्तंभ लेखन भी महत्वपूर्ण है। धनंजय शर्मा ने कहा है ''प्रेमचंद के वाद अकेले परसाई है जिन्होनें सपाट गद्य की अखबारी तात्कालिकता को इतनी रचनात्मक उत्तेजना दी है कि उनके अनुभव चरित्र और घटनायें अनायास प्रतीक और विम्व का दर्जा अख्तियार कर लेते है और समकालीन इतिहास के अनिवार्य अंग बन जाते है।''[1]

परसाई जी की भाषा विविध स्तरों और अनेक पर्तो के भीतर चलने वाली किसी करंट की अर्न्तधारा की तरह है। उनकी भाषा सहज, सरल और अत्यंत धारदार तो है ही, साथ ही इसमें विभिन्न प्रकार की वस्तुओं, स्थितियों, सम्बन्धों और घटनाओं के यथार्थ वर्णन की भी अद्‌भुत क्षमता है, उनके विविध दुर्लभ है।[2]

परसाई जी ने भाषा में अभूतपूर्व कला कौशल दिखलाया है। परसाई जी शैली और शिल्प के कलाकार नहीं है परसाई जी की रचनाये समान रूप से समाज की सभी महत्वपूर्ण त्रुटियों और विसंगतियों पर प्रकाश डालने वाली है। उन्होंने कहीं

---

(1) परसाई रचनावली, खंड-पांच से उदघृत पृ. सं. 125

(2) परसाई रचनावली, खंड-पांच से उदघृत पृ. सं. 1

कहीं राजनैतिक दुष्प्रभाव जो समाज पर पड़ते है, उनका भी वर्णन अपनी कहानियों में किया है। परसाई जी की उपयोगिता आज समाज सुधारक के रुप में हो गयी है। भारतीय समाज आज भी वहीं है जहाँ पहले था वल्कि आज तो अन्तर्विरोध बढ़ता जा रहा है तथा जीवन के दौहरे मापदण्ड स्थापित होते जा रहे है। जीवन में आने वाले कई बात के विरोधों और अड़चन को उन्होनें हमें बताया है और उससे निपटने के लिये भी उपाय बताये है। एक व्यंग्यकार होते हुये भी समाज सुधारक के रुप में हमारे सम्मुख उपस्थित हुये है।

परसाई जी ने हँसी के कारणों को महत्व नहीं दिया है, मात्र हँसने वाली मनोरंजक विसंगति जीवन व्यापक एवं जटिल संदर्भो को न स्पष्ट करने वाली विसंगति व्यंग्य की सीमा से परे है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियाँ रचनाकार की चेतना को जाग्रत करती है। वह एक जटिल प्रक्रिया है। रचनाकार इन विसंगतियों को उजागिर करता है तथा उसका पर्दाफाश करता है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों रचनाकार को प्रहार करने के लिये प्रेरित करती है।

परसाई जी का चिंतन जीवन शैली को ही स्पष्ट रुप से प्रभावित करता है। जीवन की अनेकानेक विसंगतियों को उनकी रचनायें छूती है। चिंतन की विविधता ही हमारे लिये प्रेरणादायक है क्योंकि उसमें समाज को नयी राह बताती है और इसमें समाज का लाभ ही होता है।

सामाजिक चिंतन व राजनैतिक चिंतन दोनों ही परसाई जी द्वारा हमें बताये गये है। दोनों ही का प्रयास हमारे जीवन पर पड़ता है। समाज की दृष्टि से जीवन में कई तरह के विघ्न आते है और इनको समाप्त करने का श्रेय परसाई जी को ही है। जिस प्रकार प्रेमचंद जी ने समाज की तस्वीर खीचीं है और उसमें रहने वाली जनता के मनोभावों का चिंतन उजागर किया है, उसी प्रकार हरिशंकर परसाई जी ने भी समाज के प्रत्येक वर्ग का जिक्र किया है और उनके अन्तर्विरोधों को भी हमारे सम्मुख रखा है, व्यंग्य के माध्यम से ही उन्होनें अपनी कल्पना शक्ति को एक नया रुप प्रदान किया है।

परसाई जी ने अपने यथार्थ चिंतन के द्वारा समाज के दर्पण को नयी दिशा प्रदान की है। परसाई जी एक सामाजिक लेखक व जागरुक लेखक के रुप में हमारे समक्ष उपस्थित हुये है। उनका कहना है कि ''समाज में वह शक्ति'' आनी चाहिये कि सामाजिक मिथ्यावाद, असामाजिक कृत्य और समाज के लिये हानिकर कार्यो का विरोध कर सकें। जिस प्रकार एक दिशा निर्देशक हमारे लिये व समाज के लिये प्रदर्शन का कार्य करता है, उसी भाँति ही परसाई जी हमारे जागरुक लेखक है।

परसाई जी ने हिंदुस्तान की संस्कृति के अनुरुप ही अपनी लेखनी चलायी है। उनका मानना है कि समाज रुपी इस लोकतंत्र में हमें अपने विचारो के साथ-साथ दूसरों के भी विचारों को महत्व देना चाहिये। हमारी संस्कृति का मूलमंत्र है -

"सर्वे भवन्तु सुखिनः'' सभी की कामना होती है – सभी का मंगल हो, सभी समृद्धिशील हो व सुखी हों। परसाई जी एक ऐसे भारतीय लेखक है जो सभी का सुख चाहते है और अपनी बात व्यंग्य के माध्यम से लोगों तक पहुँचाते है।

परसाई जी के चिंतन से समाज का कल्याण ही संभव है। चाहे वह शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्र में ही क्यों न हो। उन्होंने मानव पतन के लिये स्वयं को ही दोषी माना है। वे कहते है कि समाज में परिवर्तन अवश्यम्भावी है परन्तु उन परिवर्तनों के साथ में ही चलने में भलाई है। मानव जीवन की विसंगतियों की परसाई को सूक्ष्म पहचान है। वह केवल विसंगतियों के चित्र मात्र ही नहीं प्रस्तुत करते अपितु उसके कारणों की खोज भी करते है। परसाई जी ने जीवन के ये स्थूल चित्र ही मानव जीवन की गहरी विवेचना करते है।

परसाई जी ने मध्यमवर्गीय यथार्थ को सफल अभिव्यक्ति प्रदान की है। दूसरा कारण उसकी गहरी जाँच पड़ताल एवं अनुभूति तथा कल्पना का समन्वय है। परसाई जी की परदुखकरिता उन्हें अन्य लेखकों से पृथक करती है। उन्होंने समाज के मध्यमवर्गीय व्यक्तियों के कष्ट व परेशानियों को अत्यंत निकट से देखा है। वे भावुक लेखक नहीं किन्तु उनकी संवेदनशीलता ही उनकी रचनाओं को सप्राण बना देती है। परसाई जी के निबंधों में भारतीय पारिवारिक जीवन की झलक दिखाई पड़ती है।

परसाई जी ने अपनी रचनाओं में ग्रामीणस्तर से लेकर संपूर्ण भारत की स्थिति पर भी विचार किया है। उन्होंने संपूर्ण भारत की स्थिति की तुलना राजनैतिक व आर्थिक दृष्टि से की है। वे स्थानीय स्तर पर भी समाज की कल्पना को अधिक महत्व देते है। परसाई जी ने आर्थिक तंत्र के प्रभाव को भी बड़ी बखूबी से ही निभाया है। परसाई जी समाज की स्थिति पर भी गंभीरता से विचार करते है।

मानवीय शोषण एवं विसंगतियों के प्रति उन्हें अधिक खबर है। परसाई जी ने यज्ञ की नवीन परिभाषा दी है और बताया है कि मनुष्य स्वयं जीवन के इस संघर्ष यज्ञ में सतत् चलता रहता है और अपने कार्यो के द्वारा समाज में सहयोग व उसका कल्याण करता रहता है।

परसाई जी के लेखन में अनुभवजन्य परिपक्वता है उन्होंने कबीर की तरह दुनिया को जाना परखा है। उन्होंने समाज के हर कोने में घातक विसंगतियों और पाखंड से साक्षात्कार किया। आम आदमी के दर्द को अनुभव किया और उसकी बेहतरी के लिये अपने ढंग से प्रयास शुरु किया। व्यंग्य के माध्यम से उन्होनें समाज के लिये गंभीर और जिम्मेदारीपूर्ण लेखन है। परसाई का साहित्य इस संदर्भ में भी महत्वपूर्ण है कि वह हमें अपनी स्थिति पर सोचने को विवश करता है। चेतना में हलचल पैदा करता है और विसंगतियों के प्रति सचेत करता है।

परसाई जी ने स्वयं के साहस के साथ व्यंग्य करने की कला है। वे दूसरों पर भी साहस व आत्मविश्वास के साथ हँसे है। उन्होंने नैतिक साहस और मानवीय सरोकार से दीप्त व्यंग्य साहित्यकार की भूमिका भी बखूबी निभाई है। हिन्दी साहित्य में सक्षम व सार्थक व्यंग्य देने वालों में परसाई का नाम अग्रणी है, उन्होंने व्यंग्य को एक सर्वथा नया चरित्र प्रदान किया है।

(2) परसाई जी के यथार्थवाद का साहित्य में स्थान :-

परसाई जी ने अपने साहित्य में यथार्थवाद को अधिक महत्व प्रदान किया है। उनका साहित्य समाज के वास्तविक चित्रण को इंगित करता है। अपने कहानी, उपन्यास और नाटकों आदि में वास्तविकता को विशेष रुप से प्रतिपादित किया है। समाज में हमारी स्थिति और समाज में हमारा योगदान है, इस बात की स्थिति को हम आवश्यक रुप से उपन्यासों व कहानियों के माध्यम से प्रकट करते है।

परसाई जी हमारे समाजवादी लेखक है और उन्होनें अपने अनुभवों व जानकारी समझबूझ के आधार पर हमें अपनी जानकारी दी है। परसाई जी ने तारसी में चरित्र वास्तविक रूप से प्रकट किये है जिससे कहानियों व उपन्यासों में यथार्थ स्पष्ट रूप से झलकता है। वास्तविकता के आधार पर ही परसाई जी ने कहानी को महत्व प्रदान किया है। उनका मानना था कि वास्तविकता के बिना फेंटासी का अस्तित्व ही संभव नहीं।

''सही व्यंग्य व्यापक जीवन परिवेश को समझने से आता है। व्यापक सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिवेश की विसंगति, मिथ्या चाल, असामंजस्य आदि का आंकलन व्यंग्य का लक्ष्य है।''(1)

वास्तविक रूप से देखा जाये तो एक व्यंग्यकार नैतिकता का ठेकेदार होता है और समाज को अपने आप में समेटे हुये होता है, यही कारण है कि उसके विचारों की पृष्ठभूमि व्यापक होती है। परसाई जी ने भी अपने विचारों की पृष्ठभूमि को इतना व्यापक रचा था कि संपूर्ण विश्व की सामग्री उनके सम्मुख थी।

आज के सजग लेखक परसाई ने विसंगतियों, लूट, शोषण, भाई-भतीजावाद, राजनीति एवं साहित्यिक आपदा और गुटबाजी, शिक्षा के नाम पर अनैतिकता, अराजकता को संस्कृति का एक हिस्सा बनते खुद महसूस किया है।

साहित्यकार युग की आत्मा होता है और उसका लेखन युग की नीहारिका। अनुभूति के थर्मा मीटर केवल अपने जमाने की ऊष्मा को नापता है। उसकी कलम युग और समूचे माहौल की सच्चाईयों का दस्तावेज लिखती रहती है।

परसाई जी ने अपने यथार्थवादी दृष्टिकोण से समग्र साहित्य के कई तरह से उसके प्रकोप और विसंगतियों से हमारा परिचय कराया है। परसाई जी का साहित्य यथार्थवादी दृष्टिकोण से पूर्ण है। उन्होंने समाज की समग्र सच्चाई को हमारे सामने

(1) *शर्मा, डॉ. राधेमोहन, हरिशंकर परसाई – व्यंग्य की वैचारिक पृष्ठभूमि, से उदघृत पृ. सं. 13*

स्तुत किया है। चाहे वह समाज की विसंगतियों का रूप हो, चाहे वह आर्थिक तंत्र की आवश्यकता हो अथवा राजनैतिक प्रतिक्रियावाद की संभावना हो। अपने ही मानवीय आदर्श को उन्होनें समाज और संपूर्ण विश्व को भूमिका के रूप में पहल पर रखा है।

''यदि कोई साहित्य मंगल, भावनाओं, मानवीय आदर्शो और मनुष्य समाज में क्षमता और सामाजिक राष्ट्रहितों की प्रतिष्ठा करता है तो भला इसमें बढी कलात्मकता और क्या हो सकती है ? परसाई का साहित्य आधुनिक जीवन की श्रेष्ठ आलोचना है, युगीन अड़चनों को व्यक्त करने वाला विशिष्ट दस्तावेज है। यदि ऐसे कलात्मक गुणों का कोई साहित्यकार प्रचार करता है तो वरेण्य है।[1]

परसाई जी ने अपने साहित्य के माध्यम से समाज की विद्रुपताओं के अतिरिक्त राजनैतिक प्रभावों को भी अपनी लेखनी का सहारा बनाया है। आज का प्रत्येक रचनाकार स्वतंत्र देश के गणतंत्र को देख रहा है, चाहे वह शरद जोशी हो, या नरेन्द्र कोहली। परसाई को तो यह गणतंत्र विठुरता हुआ लगता है। जब गणतंत्र सिकुड़ रहा हो तो जरुरी है कि सूर्य की गरमाहट आये पर सूरज तो कैद है, आगे तो आये कहाँ से आये ! परसाई का सूरज आजादी का है – दुःख, विपदाओं को दूर कराने वाला – जिसकी प्रतिभा हम युग को बड़ी बेसब्री से है।

---

(1) डॉ. शर्मा, आर. एम. 'हरिशंकर परसाई व्यंग्य की वैचारिक पृष्ठभूमि' से उदघृत पृ. सं. 39

''जरा धीरज रखिये ! हम कोशिश में लगे है कि सूरज बाहर आये। पर इतने बडे सूर्य को बाहर निकालना आसान नहीं है, वक्त लगेगा। हमें सत्ता में कम-से-कम सौ बर्ष तो दीजिये।''[1]

परसाई जी ने सूर्य के माध्यम से आज के राजनैतिक नेता संकल्पना की है, कि सूर्य सभी नेता को हम विसंगतियों और भ्रष्टाचार से बाहर लाने की कोशिश कर रहे है वे भ्रष्ट व काले हो गये है तथा ''बेईमानी की परत'' उन पर चढकर इतनी मोटी हो गयी है कि हम इसे रोज निकालकर कम रहे है और वास्तविक समाज के अनुकूल बना रहे है। समाज के अनुकूल से हमारा आशय है, साहित्य के रुप से संकल्पित समाज ही हमारा असली समाज है और उसमे रहने के अनुकूल लोग हमें चाहिये।

परसाई जी ने कि दिग्भ्रमित और रास्ते से भटके हुये लोगों को भी रास्ता दिखाने की कोशिश की है। आज प्रत्येक मनुष्य अपनी टूटन को महसूस कर रहा है वह चाहकर भी इतना अपने को मजबूर समझ रहा है कि वह अब समाज का अंग नहीं वन पायेगा। वह समाज से याचना कर रहा है और अपने अधिकारों की माँग करता है। पर कुछ नहीं कर पाता है। याचना ही आज व्यक्ति का अधिकार है, उसका नशा या पारा सभी के सामने ठंडा पडकर धीरे-धीरे उतर जाता है।

---

(1) *हरिशंकर परसाई – 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र' से उदधृत पृ. सं. 1*

परसाई जी का साहित्य इन्हीं अर्थों में लोक मंगलकारी और जनवादी साहित्य है। उनसे जुडे होने के कारण उसमें नाम की सरल ग्राम अलमारी भाषा का प्रयोग हुआ है। उसमें किसी भी प्रकार की बहुत बडी कलात्मक उपलब्धि की आशा करना व्यर्थ है। **क्योंकि अधिकतर व्यक्ति** अपनी और अपने परिवार की चिन्ता करता है लेकिन उसे जिस समाज में रहना है उसमें कोई सरोकार नहीं रहता है। परसाई जी ने बड़े स्पष्ट शब्दों में इसे स्वीकार भी किया है और हमारे समक्ष अपना पहलू रखा है।

परसाई जी ने आर्थिक और राजनीतिकरण के त्रुटिकरण को भी अपनी लेखनी के माध्यम से उजागर किया है। 'जैसे उनके दिन फिरे' निवन्ध में दुस्साहस, लुटेरेपन और बेईमानी का चित्रण और 'लंका विजय के वाद' में शासकीय भ्रष्टाचार को उजागर किया है।

परसाई जी ने गणतंत्र को बचाने और उसे अधिक मजबूत करने के लिये भी वात कही है। 'सदाचार का ताबीज' में उन्होनें कहा है – समाज से जनतंत्र बचेगा – कोई कहता है – समाजवाद से मर जायेगा।[1]

---

(1) *हरिशंकर परसाई – 'सदाचार का ताबीज' से उदधृत पृ. सं. 14*

परसाई जी ने फैंटासी के माध्यम से अपने उपन्यासों एवं कहानियों में वास्तविकता को हमारे सम्मुख लाने का प्रयास किया है। वे सजग और स्पष्ट जीवन व्यतीत करने वाले इंसान थे इसीलिये उनके उपन्यास और किंचित निबन्ध भी वास्तविकता का बोध कराते हैं।

आज के इस युग में भी वह जनता को यह समझाते हैं कि चकाचौंध भरी दुनिया में उसका अस्तित्व क्या है ? और उसका क्या योगदान है ? इस आपाधापी की दुनिया में आज जनता अपने को अलग-थलग ही पड़ा पाती है।

परसाई जी की फैंटासी वास्तविकता के काफी निकट होने के कारण आम जनता को समझने के योग्य है वे यह जानते थे कि भारतीय जनता में समझने की शक्ति कम होने के कारण तथा अधिकतर जनता कम पढ़ी-लिखी होने के कारण भाषा सरल से सरल होना अनिवार्य है जिससे अधिक से अधिक जनता इसका फायदा उठा सके।

परसाई जी ने अपने कथा साहित्य में राजनीतिक और सामाजिक प्रभाव को अपने उपन्यासों में स्पष्ट रुप से इंगित किया है। राजनीति का प्रभाव हमारे समाज पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रुप से पडता है।

''साधो अब करना यह चाहिये। रोज विधानसभा के बाहर एक बोर्ड पर आज का बाजार भाव लिखा रहे। साथ ही उन विधायकों की सूची चिपकी रहे जो बिकने को तैयार हैं। खरीददार को भी सुभीता होगा और माल को भी।''(1)

राजनीति के माध्यम से उन्होंने विधायकों, सांसदों और प्रत्येक राजनैतिक व्यक्ति के भावों का खुलासा किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इसी भारतीय राजनीति में सब कुछ बिकता है। एक स्थान पर उन्होंने स्पष्ट रुप से लिखा है – ''जैसे–जैसे हम आगे बढे राजनीति में से 'नीति' गायब हो गयी और 'राज ' व्यवसाय हो गया। अब व्यवसाय में सिद्धांत, आदर्श वगैरह को नष्ट कर देना पड़ता है तो वे नष्ट हो गये।''(2)

वर्तमान संदर्भो में राजनीति और उसके समाज पर प्रभाव को परसाई जी ने काफी निकटता से संवंधित किया है, वे चाहते हैं कि इस प्रभाव से जनता को एक सवक मिले और वे भविष्य में पड़ने वाले प्रभावों से सतर्क हो जाये। ''तुम विधानसभा के सदस्य किसी पार्टी से हो जाओ। जब विरोधी गुट उस पार्टी की सरकार को गिराने की योजना बनायेंगे, तब विधायक खरीदे

---

(1) परसाई हरिशंकर, ''विधायक नये बाजार में'', – तुलसीदास चन्दन घिसे से उद्धृत पृष्ठ सं- 150
(2) परसाई हरिशंकर, ''विधायक नये बाजार में'', – तुलसीदास चन्दन घिसे से उद्धृत पृष्ठ सं- 150

जायेंगे। तुम पाँच-दस लाख लो और दल बदल लो। धन्धा यहीं खत्म नहीं होता। विधायक कोई आलू नहीं कि एक बार बिका और उसकी सब्जी बनाकर खा ली गयी। विधायक की सब्जी नहीं बनती। वह आलू का आलू ही रहता है। दुबारा अपनी पुरानी पलटने की तैयार हो, तो फिर पाँच-दस लाख लेकर अपनी पुराने पार्टी में लौट आये। यह, अपने को बेचने का धन्धा कभी बन्द नहीं होता - जैसे-जैसे लोकतन्त्र का बाजार फैलता जाता है उपभोक्ता वस्तु की कीमत बढती जाती है।''[1]

परसाई जी ने अपने उपन्यास में लोकतन्त्र को एक नई परिभाषा में पिरोया है, उनके अनुसार अब राजनीति केवल पैसों का अखाड़ा ही बन गयी है। राजनीति में आयाराम-गयाराम वाला सिद्धांत लागू हो गया है, वह भी पैसे की खातिर। पूर्व जैसा कुछ भी नहीं है, देशभक्ति नहीं, समाजवाद नहीं।

''साधो, यह हमारी हीनता की भावना की प्रतिक्रिया है। हीनता और उच्चता की भावनाऐं एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सदियों से दबे हम लोग हम पर राज करने वाले पश्चिमी गोरों को अभी भी देवता मानते हैं। उनमें

---

(1) परसाई हरिशंकर, ''विधायक नये बाजार में'', - तुलसीदास चन्दन घिसे से उद्घृत पृष्ठ सं - 148

म्पन्न अमेरिकी परम पूज्य देवता होते हैं। हम अपने को सब तरह से हीन नते हैं और गोरों से सर्टिफिकेट चाहते हैं। इस हीनता के साथ यह दीन गर्व ी है कि हम ही तो वेदों, उपनिषदो वाले है, हमारी प्राचीनतम महान स्कृति है।''(1)

अपनी संस्कृति और सभ्यता को एक महानता का दर्जा देने के बावजूद नकी फंटासी में एक दर्द सा दिखाई देता है और उसका अहसास भी में होता है जिससे यह प्रतीत होता है कि उनकी कहानियों में व्यंग्य तीखा यों है।

परसाई जी अपने तीखे व्यंग्य बाणों के लिये जाने जाते हैं और इसीलिये उन्होंने राजनीति के साथ-साथ अर्थतंत्र पर भी प्रहार किया है। समाजवाद को वे उपन्यास और कहानी की पृष्ठभूमि मानते हैं। ''हिन्दू शब्द से उनकी उदात्त पुरातन आत्मा गलित हो गयी। उन्हें ये समझ में नहीं आया कि इस सम्मेलन का सरोकार न हिन्दू जाति से है, न हिन्दू धर्म से, न हिन्दू संस्कृति से। यह हिन्दू भावना को गैर हिन्दू के प्रति घृणा से आक्रामक बनाकर उसका राजनैतिक लाभ उठाने का एक साम्प्रदायिक दल का घृणित षड्यंत्र था। इसमें गैर हिन्दुओं के प्रति हिंसा की भावना उभारी गयी।''

---

1. परसाई हरिशंकर, ''जयपुर में एक गोरी शादी'', - तुलसीदास चन्दन घिसे से उद्घृत पृष्ठ सं- 138

परसाई जी साहित्य के माध्यम से सामाजिक प्रभावों और दुराभावों को स्पष्ट करते हैं। वे चाहकर भी यह समझ नहीं पा रहे हैं कि समाज में परिवर्तन हो रहा है या समाज स्थिर हो चुका है। क्योंकि कहीं-कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे लोग संस्कृति को किसी दूसरी ओर मोड़ कर ले गये हैं और कहीं ऐसा प्रतीत होता है कि हमारा समाज एक दम स्थिर भाव में आ गया हो। साहित्य से हमारा समाज अवश्य प्रभावित होता है लेकिन यह प्रभाव कहीं भी और कभी भी दिखलाई नहीं पड़ता है।

''अतिशय रगड़ करै जो कोई
अनल प्रगट चन्दन तें होई।''[1]

तुलसीदास जी के दोहे से ऐसा प्रतीत होता है कि जानबूझ कर यदि हम कोई चीज घीसे तो उससे उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है चाहे इसके लिये हमें कुछ भी करना पडे। परसाई जी ने भी यही कहा है कि यदि हम किसी समाज को परिवर्तित करना चाहे तो इसको काफी हिलाना पड़ेगा और सभी मनुष्यों को तथा उसके विचारों को भी परिवर्तित करना पड़ेगा।

वास्तविक रुप से परसाई जी यह चाहते हैं कि हम जो भी कार्य करें उसका गलत प्रभाव हम पर या समाज पर न पड़े इससे प्रभावित लोग और

(1) परसाई हरिशंकर, ''चन्दन क्यों घिसा'', - तुलसीदास चन्दन घिसे से उद्‌घृत पृष्ठ सं- 14-16

गलत प्रभाव समाज पर छोड़ेगे। क्या यह सही बात है ? उन्होंने समाजवाद की कल्पना एक स्वच्छ, भ्रष्टाचार से रहित और भ्रष्ट राजनीति से दूर रहकर ही की है।

परसाई जी ने मध्यवर्गीय यथार्थ को सफल अभिव्यक्ति प्रदान की है। इसका कारण उसकी गहरी जांच पड़ताल एवं अनुभूति तथा कल्पना का समन्वय है। परसाई जी की पर दुखकातरता उन्हें अन्य लेखकों से अलग करती है। परसाई जी तटस्थ लेखकों की भाँति केवल वर्णनात्मक शैली का प्रयोग नहीं करते अपितु उनका रचनात्मक कौशल अन्य लेखकों से बिल्कुल अलग है। परसाई जी ने मध्यवर्गीय व्यक्तियों के कष्ट एवं परेशानियों को अत्यन्त निकट से देखा है। उनकी पूरी सहानुभूति इनके साथ है। परसाई जी भावुक लेखक नहीं है किन्तु उनकी संवेदनशीलता ही उनकी रचनाओं को सप्राण बना देती है।

परसाई जी ने पारिवारिक व सामाजिक विसंगतियों का सूक्ष्म निरीक्षण किया है तथा अपनी कुशल रचना प्रतिभा के बल पर इसका सफल चित्रांकन किया है।

परिवार की मुसीबतों और विसंगतियों का चित्रण अपने निबंधों और उपन्यासों में किया है। ''वो जरा वाईफ है न'' नामक निबंध में परसाई जी ने

''भारतीय पति'' का बड़ा मनोवैज्ञानिक विवेचन किया है। भारतीय पति पत्नी को दुनिया की नजरों में बनाकर रखना चाहता है। मध्यवर्गीय मानसिकता उसे इससे मुक्ति नहीं देती। पति की बीमार मानसिकता का बड़ा ही सटीक चित्रण किया गया है। केवल मध्यवर्गीय पति की ही यह स्थिति नहीं है। शिक्षितों, कलाकारों की स्थिति इनसे भी बदतर है वे किसी भी कीमत पर अपनी पत्नी को आगे आने देना नहीं चाहते।

''कंधे श्रवण कुमार के'' नामक निबंध में भी पारिवारिक स्थिति का विवेचन किया गया है। आज भी व्यक्ति अपनी पुरानी मान्यताओं से ही चिपका हुआ है। युवा वर्ग के समक्ष आज भी श्रवण कुमार का ही उदाहरण है। पिता की उम्मीदें भी वहीं है।

युवा आक्रोश, कुंठा और उनकी कुछ कर सकने वाली क्षमता को परसाई जी ने अच्छी तरह से पहचाना है। माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध जाने वाले युवकों पर उन्होंने व्यंग्य न कर उनका समर्थन किया है।

''मगर देख रहा हूँ श्रवण कुमार के कंधे दुखने लगे हैं। यह कांवड़ हिलाने लगा है, कांवड में अंधे परेशान है। विचित्र दृश्य है यह - दो अंधे एक आंख वाले पर लदे है और उसे चला रहे हैं। जीवन से कट जाने के कारण एक पीढ़ी दृष्टिहीन हो जाती है तब वह आगामी पीढ़ी के ऊपर लद जाती है।''

परसाई जी ने अनेकानेक सामाजिक विकृतियों का निरुपण किया है उन्होंने सामाजिक दर्शन कराये है और सार्थक तथा यथार्थ धरातल पर समाज का प्रतिबिम्ब उतारा है जिससे समाज को एक नयी दिशा मिली है।

परसाई जी ने राजनीति और सहकारिता पर भी अपनी पैनी नजर दौड़ाई है। मजा तो इस बात का है कि जो वर्ग जिसके लिये प्रतिबद्ध है वहीं उसे नष्ट कर रहा है। लेखकीय स्वतंत्रता के लिये मारे लोग ही लेखक की आजादी पर डाका डाल रहे हैं। सहकारिता आंदोलन के समर्थक ही उसे चौपट कर रहे हैं। सहकारिता को लेखक स्पिरिट के समान मानता है। सब मिलकर सहकारितापूर्वक खाने लगते है और आंदोलन को नष्ट कर देते हैं। समाजवाद का रास्ता आज समाजवादी ही रोके खड़े हैं कारण कि वह चाहता है कि वर्गभेद बना रहे ताकि गरीबों को चूसकर वह अपना बैंक-बैलेंस बड़ा करता रहे।

समाजवाद एक नारा है जिसे समाजवादी चिल्ला देता है। वह उसके अर्थ को जाने बिना ही अपने को व्हाइट समझने लगता है वह यह नहीं जानता कि यदि नारे लगाने से ही हिन्दुस्तान की किस्मत बदल जाती है फिर आज दाने-दाने को यह देख मोहताज नहीं होता।

परसाई जी आज अपने लेखनी के माध्यम से समाज को एक नयी राह दी और उस पर चलने से पहले उसका परीक्षण करने की भी सलाह दी है। समाज़वाद के झंडे तले उन्होंने रहने को तो कहा है परन्तु उसके माध्यम से समाज को भी नवीन प्रयोग के लिये अपील भी की है।

समाजवाद के साथ परसाई जी ने इन तथ्यों को बहुत ही अच्छी तरह से पहचाना है तथा भारतीय नेताओं का अत्यन्त मनोवैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया है। परसाई जी ने अपने निबंधों, कालमों में राष्ट्रीय राजनीतिक लेखों में इन सभी विन्दुओं पर विचार किया है। दलगत राजनीति की अत्यन्त सटीक समीक्षा की है तथा राजनेताओं का वास्तविक चरित्र हमारे सामने प्रस्तुत किया है। परसाई जी के राजनैतिक निबंध राष्ट्रीय राजनीति का दर्पण है। इनमें राजनीति के सभी पहलूओं पर विचार किया गया है। शायद ही कोई राजनैतिक पार्टी, नेता या राजनीतिक मुद्दा छुटा हो। जिस पर परसाई जी ने विचार न किया हो। उनके लेखों में परिवर्तन और निर्माण, विध्वंस और नवीन विचारों की छवि हमें देखने को मिलती है।

परसाई जी का रचना क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। उनके निबंधों में भारतवर्ष का सम्पूर्ण समष्टि इतिहास, वातावरण, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश तो उपस्थित है ही विश्व का प्रत्येक राजनैतिक घटनाक्रम भी मौजूद

है। उन्होंने प्रत्येक क्षेत्र की विसंगतियों को परसाई जी की दृष्टि से देखा है। उन्होंने कार्य एवं कारण संबंधों को पूरी तरह से स्पष्ट किया है। परसाई जी जीवन संघर्ष के अमानवीय स्थितियों के भीतर उन तथ्यों की खोजबीन कर लेते हैं जिनके कारण मानवीय जीवन निरंतर कष्टप्रद और अमानवीय होता जा रहा है। परसाई जी के निबंधों में स्वातंत्र्योत्तर भारत का एक सुनिश्चित एवं विश्वसनीय इतिहास मिलता है।

परसाई जी हमारे पथ-प्रदर्शन भी है जो कि हमें पल-पल में कहां और कैसे चलना है और अपने विचारों को समाज के सम्मुख कैसे रखना है यह बताते हैं। उनके कथा साहित्य में कोई भी ऐसा विचार नहीं होता जो कि हमारे लिये बहुमूल्य नहीं है। वे सदैव ही जनता के मार्गदर्शक रहे हैं। उन्होंने फंटासी के माध्यम से वास्तविकता को उजागर करने की कोशिश की है। जनता को हमेशा ही व्यंग्य के माध्यम से सबक सीखाने की कोशिश की है। जिसने जागरुकता के साथ उनके व्यंग्य को पढ़ा हो वह हमेशा ही किसी न किसी चीज से सबक लेकर रहा होगा। कथा-साहित्य को एक नवीन आयाम प्रदान करने का कार्य हरिशंकर परसाई जी ने किया है उन्होंने व्यंग्य को सामाजिकता व राजनीतिक विद्रुपताओं के माध्यम से हमें एक चेतना प्रदान की है।

परसाई जी को जनता का लेखक भी इसीलिये कहा जाता है कि वे जनता के समीप रहकर उनकी समस्याओं के लिये संघर्षरत रहे जनता को रास्ते की खोज के माध्यम से नवीन बातों से अवगत कराते रहे हैं।

सामाजिक जीवन के यथार्थ धरातल पर परसाई जी ने अपनी कलम चलाई है वे सदैव यह चाहते थे कि जो भी काम किया जाये वे सामाजिक हित में हो और जिससे एक नवीन चेतना सबके मन में जागृत हो सके। परसाई जी ने सामाजिक कुरीतियों के माध्यम से और उनके दोषों को हमारे सामने रखा है। उन्होंने विसंगतियों के खिलाफ विद्रोह की आवाज ही नहीं बुलन्द की बल्कि उसकी कलम भी तीक्ष्ण की।

परसाई जी के लेखन की यह विशेषता है कि वे केवल विनोद या परिहास के लिये नहीं लिखते। उनका सारा लेखन सोद्देश्य है और सभी रचनाओं के पीछे एक सफल साफ सुधरी वैज्ञानिक जीवन दृष्टि है, जो समाज में फैले हुए भ्रष्टाचार, ढोंग अवसरवादिता अंधविश्वास, सांप्रदायिकता आदि कुप्रवृतियों पर तेज रोशनी के लिए हर समय सतर्क रहती है। कहने का ढंग चाहे कितना हल्का फुल्का हो किन्तु हर निबंध आज की जटिल परिस्थितियों को समझने के लिये एक अन्तदृष्टि प्रदान करता है।

इस तरह से हम देखते हैं कि परसाई जी आधुनिक युग के कबीर हैं। उन्होंने अपने युग की तमाम समस्याओं, यातनाओं तथा पीड़ाओं को वाणी दी है। समाज में व्याप्त विसंगतियों, भ्रष्टाचारों तथा लालफीताशाही एवं अवसरशाही के नाम पर हो रही अंधेरगर्दी का भण्डा चौराहे पर फोड़ा है। समाज सेवा, धर्म, क्रांति तथा सुधार का नकाब पहने हुऐ लोगों के नकाब फाड़कर उन्हें खड़े बाजार नंगा करने का अपूर्व एवं अदम्य साहस एवं शौर्य का अपनी सशक्त लेखनी से परिचय दिया है। उनका प्रत्येक व्यंग्य लेख हिन्दी गद्य साहित्य का बेजोड़ रत्न है।

साहित्य अपने जमाने का आईना होता है उसमें उस समय का सभी काल, वस्तु एवं विषय सामग्री सामने परिलक्षित होती रहती है। परसाई जी का गद्य साहित्य भी इसी आईने के समान रहा है। उन्होंने अपने आईने में समाज की पूर्ण तस्वीर एक साफ आईने के समान हमारे सामने रखी है।

साहित्य की मीमांसा भी यही होती है कि एक लेखक अपने जमाने और अपने से पहले के जमाने और समय की बातें ही समाज के सामने रखता है। उस समय की बुराईयों और अच्छी बातों को समाज को बताने की कोशिश करता है। वह प्रचारात्मक या युगमात्र का आकलन करता है। इसी के

साथ-साथ वह इसी प्रलेख में कुछ संशोधन करने की सोचता है। व्यक्ति बदलते जाते हैं पर मानवीय व्यवहार एवं संशोधन वैसा ही रहता है।

समाज के संदर्भ में उनका यही दर्शन रहा है। उनका कहना था कि मेरे समय में जो भी गंदगी आज समाज में दिखाई दे रही है वह काफी पहले की है, परन्तु उसी गंदगी और विसंगति को आज हम देख कर नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं क्योंकि यही गंदगी आगे बढ़कर हमारे समाज की और चीजों को खराब कर सकती है। यही कारण है कि उनके साहित्य में इस समय के साथ-साथ पहिले के काल की विद्रुपताओं का सुक्ष्म परीक्षण दिखाई देता है।

जनतंत्र में व्यंग्य को फलने-फूलने का अच्छा खासा मौका दिया है। चूंकि बोलने की हमें इजाजत है इसीलिये लोग खुलकर इसका प्रयोग ही नहीं करते, दुरुपयोग करने में भी हिचकिचाते नहीं है। यहां तक कि सूप तो बोले ही, चलनी भी बोलती है जिसमें बहत्तर छेद होते हैं। मेरे कहने का आप यह अन्दाजा नहीं लगाये कि मैं व्यंग्य करने की खिलाफत कर रहा हूँ। महज मैं संकेत करना चाहता हूँ कि अंकुश युक्त व्यवस्था में लेख विसंगतियों को फूंककर उधेड़ता है। उन्हें सजा-संवार कर पेश करता है ताकि अभिव्यक्ति दिलो-दिमाग पर भीतर तक चोट कर सकें। परसाई जी ने अपने व्यंग्य लेखों में सटीक और सधे व्यंग्य किये है किन्तु कुल मिलाकर ढेर सारे व्यंग्य लेखकों

में कलात्मक उत्तरदायित्व पूर्ण व्यंग्य लिखने की भावना का उदय अभी नहीं हो पाया है।

परसाई जी ने यह कोशिश अवश्य की है कि आज जो कुछ भी बर्दाश्त नहीं होता वह उन्हीं की ही देन है जो आज हम गलत और बुरे का फर्क और अच्छे का अर्थ समझ सकने में सक्षम हो सके हैं।

॥ संदर्भ ग्रंथ सूची ॥

(1)	डॉ. व्यास, मदालसा	''हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई'' विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
(2)	डॉ. सिंह, अर्चना	''व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई और उनका साहित्य'' साहित्यसंगम, इलाहाबाद।
(3)	परसाई, हरिशंकर	परसाई रचनावली – भाग–१ (समग्र) संपादक – कमला प्रसाद व अन्य लेखकगण।
(4)	परसाई, हरिशंकर	परसाई रचनावली – भाग–२ से ५ तक संपादक – कमला प्रसाद व अन्य लेखकगण रामकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (समग्र)।
(5)	डॉ. रामचंद तिवारी	''आधुनिक हिन्दी आलोचना संदर्भ एवं दृष्टि (पारिभाषिक शब्दावली) का साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी''
(6)	प्रो. शर्मा, राधेमोहन	''हरिशंकर परसाई – व्यंग्य की वैचारिक पृष्ठभूमि'', भूमिका प्रकाशन, नई दिल्ली–२

(7) परसाई, हरिशंकर "तुलसीदास चंदन घिसे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली"

(8) परसाई, हरिशंकर "पगडंडियों का जमाना", राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

(9) परसाई, हरिशंकर "निठल्ले की डायरी", राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

(10) परसाई, हरिशंकर "शिकायत मुझे भी है", राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

(11) परसाई, हरिशंकर "विकलांग श्रद्धा का दौर", राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

(12) परसाई, हरिशंकर "जाने पहचाने लोग", राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

(13) परसाई, हरिशंकर "आवारा भीड़ के खतरे", राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

(14) परसाई, हरिशंकर "मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनायें", राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

(15) परसाई, हरिशंकर "सदाचार का तावीज", राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

(16) परसाई, हरिशंकर "बोलती रेखायें", राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

(17) परसाई, हरिशंकर "तिरछी रेखायें", राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

:: पत्र–पत्रिकायें ::

(1) साक्षात्कार — मध्यप्रदेश शासन, संस्कृति विभाग का प्रकाशन।

(2) वसुधा — साहित्यिक पत्रिका के लेख व शोध पत्र

(3) कुरुक्षेत्र — भारत सरकार के प्रकाशन विभाग का मुखपत्र।

(4) साहित्य अकादमी का प्रतिवेदन।

(5) मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल का प्रतिवेदन।

(6) भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन का प्रतिवेदन।

(7) दैनिक नवभारत।

(8) धर्मयुग।

(9) साप्ताहिक हिन्दुस्तान।

(10) देशबंधु।

(11) सुविज्ञ लेखकों के पत्र परसाई जी को एवं आलेख।